
DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
Reg no.

श्रीयुद्ध शमशेर-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प

वीर सिपाही

भारतीय सैनिकों की वीरता, साहस और आत्म-बलिदान की कहानियाँ

भूमिका-लेखक :
महावीर त्यागी
रक्षा-मन्त्री (संगठन), भारत-सरकार

लेखक :
सन्तराम 'विचित्र'

प्रकाशक :
साहित्य-सदन, देहरादून

प्रकाशक :
साहित्य-सदन,
पल्टन बाजार, देहरादून।

मूल्य :
तीन रुपए

१६५४ : पहली बार

मुद्रक :
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, क्वींस रोड, दिल्ली।

प्राक्कथन

Minister of Defence
Organisation

नई देहली,
दिसम्बर ३, १९५३।

वीर सिपाही नामक पुस्तक के लेखक श्री सन्तराम "विचित्र" सचमुच हमारी बधाई के अधिकारी हैं। बहुत सरल और ओजमयी भाषा में इन्होंने इस पुस्तक में भारत के आधुनिक योद्धाओं के उन महान कार्यों की चर्चा की है जिन को पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह किसी उपन्यास की कल्पित रचनायें नहीं हैं बल्कि वह ओजमयी और रोमांचकारी घटनायें हैं जो हमारे वीर सैनिकों ने अपने जीवन की बाज़ी लगाकर विरासत के रूप में हमको प्रदान की हैं ताकि हम और हमारी सन्तति अपने कल्याण के लिये इन्हें पढ़ें और दूसरों को पढ़कर सुनायें। मैं विशेष रूप से सैनिकों और विद्यार्थी मंडल से अनुरोध करूंगा कि वह इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें, क्योंकि ऐसी अनोखी घटनायें हमारे मन में आत्मविश्वास और उत्साह का संचार करेंगी।

जिस जोश और तत्परता के साथ हमारी सेना देश-रक्षा के कार्यों में लगी है, यह घटनायें उसके अनमोल नमूने हैं। जो अमर शहीद जन्मभूमि के पवित्र चरणों को अपने खून से सींचकर वीरगति को प्राप्त हो गये यह पुस्तक उनकी याद ताज़ा रखने में हमारी सहायक होगी ताकि हम भी उस रक्तवर्णी मिट्टी का तिलक माथे पर लगाकर माँ की रक्षा के योग्य बन सकें और जो वीर सैनिक अपनी जान पर खेलकर मैदान से विजयी होकर लौट आये हैं, उनके दर्शनों से हमारे देश के युवक राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

इस पुस्तक से भारतीय सैनिकों का मान बढ़ेगा।

(महावीर त्यागी)

जिनकी वीरतापूर्ण

क

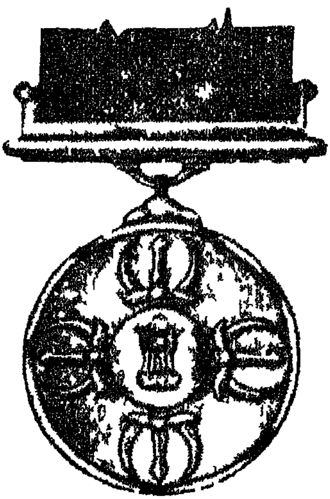
हा

नि

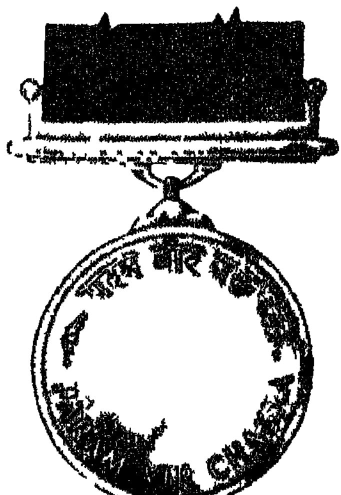
याँ

इस किताब में हैं

भारतीय सेना के पदक



मुख

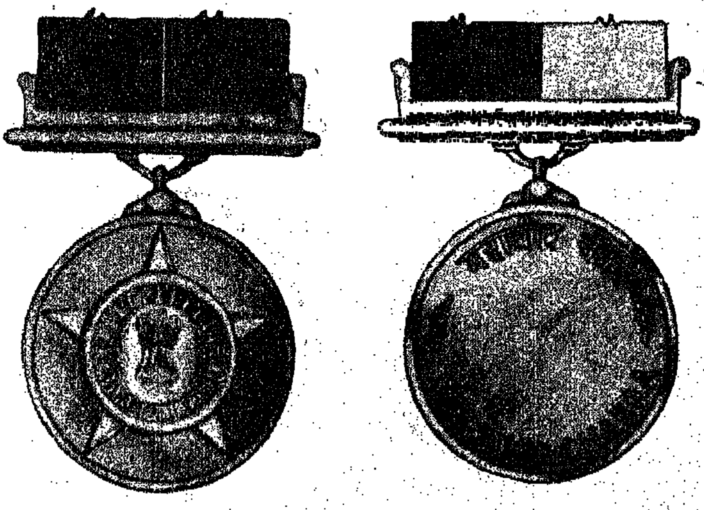


पृष्ठ

भारतीय गणतंत्र का उच्चतम सैनिक पदक

परम-वीर-चक्र

(प्रतिवर्ष गणतंत्र-दिवस—२६ जनवरी को भेंट किया जाता है)

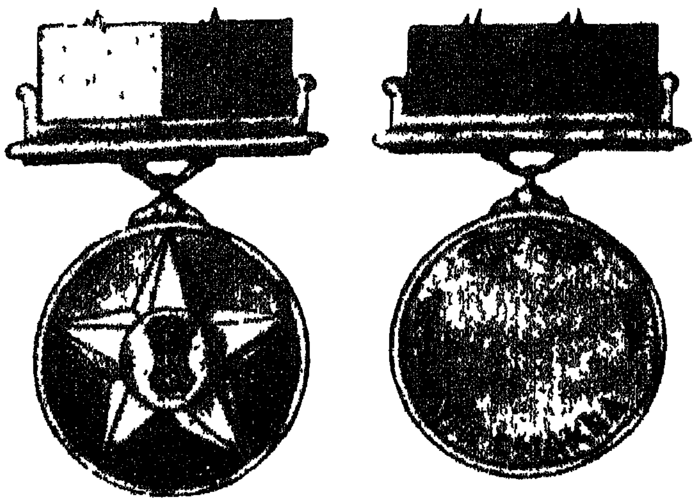


मुख—　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ

भारतीय गणतंत्र का द्वितीय महान् सैनिक पदक

महावीर-चक्र

(प्रतिवर्ष स्वाधीनता-दिवस—१५ अगस्त को भेंट किया जाता है।)



मुख पृष्ठ

भारतीय गणतंत्र का तीसरा सैनिक पदक

वीर-चक्र

(प्रतिवर्ष स्वाधीनता-दिवस—१५ अगस्त को भेंट किया जाता है।)

[विस्तृत वर्णन के लिए देखें पृष्ठ १४६]

यह वीर सिपाही

जन-साधारण एक सैनिक को देखकर केवल इतना ही खयाल कर सकता है : कि वह एक आदमी है, जिसके पास बन्दूक होती है, और युद्ध के मैदान में सामने वाले दुश्मन से लड़ता है। और लड़ते हुए वह जान भी दे सकता है, या दे देता है, अथवा उसका पक्ष जीतता है या हार जाता है। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण से एक सैनिक की यह मोटी-सी व्याख्या बहुत अधूरी है। भारतीय परम्परा में सैनिक केवल जान लेने या देने वाला ही नहीं, बल्कि भारतीय परंपरा का सैनिक जन-साधारण की स्थिति से पर्याप्त उच्च व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व श्रेष्ठ होता है, वह धर्म का पालन करने वाला वीर पुरुष है, वह दीनों, असहायों, बेबसों और पीड़ितों की रक्षा करने वाला है। वह दयावान् है, किन्तु वह दुःख देने वालों, मनुष्यता को पीड़ा पहुँचाने वालों पर दया नहीं करता। अपने बल, साहस और त्याग से वह निर्दयी को मौत के घाट उतारता है, वह पाप का नाश करता है और पुण्य का उदय करता है। भारतीय परम्परा में वही सैनिक ; वीर है, योद्धा है। धर्मांचारी पुरुष है; धर्म का पालन करने वाला श्रेष्ठ पुरुष है।

महाभारत का युद्ध इसका जीता-जागता उदाहरण है। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव और पाण्डवों के बीच जो युद्ध हुआ था, वह धर्म और अधर्म के बीच युद्ध था, वह सच और झूठ के बीच लड़ाई थी, वह पाप और पुण्य के बीच युद्ध था। लेकिन कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने बंधु-बांधवों को देखकर अर्जुन ने लड़ने से इन्कार कर दिया था। गांडीवधारी अर्जुन ने शस्त्र डाल दिये थे। एक सैनिक का धर्म क्या है, इसे वे भूल गए थे, एक सैनिक का कर्त्तव्य क्या है, इसकी उन्हें सुध नहीं रही थी। वह धर्म और कर्त्तव्य के सामने भाइयों की जानें बड़ी समझ रहे थे। लेकिन जब भगवान् कृष्ण ने उन्हें गीता-धर्म का उपदेश दिया, और जब भगवान् ने उन्हें कर्म का महत्त्व बतलाया तो अर्जुन संभले। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि यह जो-कुछ भी होने जा रहा है, यह तुम्हारे ही हाथों तुम्हारे बन्धु-बांधवों का नाश नहीं, बल्कि भगवान् तुम्हें साधन बनाकर अधर्म को नष्ट करके धर्म का प्रसार करेंगे। यह तो उन्हीं का आदेश है, आज्ञा है, हुक्म है; और एक सैनिक के लिए आदेश-आज्ञा-हुक्म सबसे महान है। क्योंकि जब-जब अधर्म की बढ़ती होती है, तो भगवान् अवतार का रूप धारण कर इस धरती पर जन्म लेते हैं और धर्म की स्थापना करते हैं। गीता में इसी विचार को इस प्रकार प्रकट किया गया है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात्, हे अर्जुन, जब-जब धर्म का नाश होता है तब-तब

मैं धर्म का उत्थान करने के लिए शरीर धारण करता हूँ।

और जब भगवान् स्वयं धर्म का उत्थान करने के लिए आते हैं, तो वह मानव-साधनों द्वारा पाप का अंत करते दिखाई देते हैं।

महाभारत से भी बहुत पहले यही बात हमें रामायण-काल में भी दिखाई जाती है। रावणरूपी पाप का नाश करने के लिए भगवान् रामचन्द्र के रूप में धरती पर जन्मते हैं। और उस काल में भी सैनिकों के द्वारा ही पाप का नाश होता है, और पुण्य का प्रसार। इस प्रकार, भारतीय परम्परा की दृष्टि से सैनिक का स्थान कितना ऊँचा है, उसका पद कितना पवित्र है। सैनिक की उच्चता और पवित्रता के कारण भारत में सैनिक-पुरुष का सदा से मान होता आया है। वह धर्म का रक्षक है, वह समाज का रक्षक और सेवक है, वह देश का—वह मातृभूमि का सच्चा पहरेदार और रखवाला है। और श्रीकृष्ण के वचनानुसार तो वह 'योगी' है। उसका युद्ध-कर्म भगवान् के इन शब्दों का सच्चा पालन है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अर्थात्, तुम्हें तो कर्म करने-भर का ही हक है, उसके नतीजे के बारे में मत सोच करो। एक सैनिक का जीवन बिलकुल ऐसा ही होता है। वह कर्त्तव्य का पालन करता है, वह धर्म का पालन करता है, और उस कर्त्तव्य और धर्म के पालन में परिणाम की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता, वह उसकी चिंता ही नहीं करता। इसीलिए सैनिक योगी है : क्योंकि योगी ही ऐसी ऊँची भावना के साथ कर्म कर सकता है।

इससे भी अधिक, भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर हमें मालूम होता है कि जब-जब भी देश पर आपत्ति आई, जब-जब भी देश पर बाहरी हमले हुए, इस सैनिक ने ही वीरता-पूर्वक उसका सामना किया। पराजय होने पर भी सैनिक ने देश का मस्तक ऊँचा रखा। इसका उदाहरण, सिकन्दर और पोरस का युद्ध है। सिकन्दर की सेना ने पोरस की सेना को हरा तो लिया, किन्तु बन्दी पोरस के ये शब्द भारतीय सैनिक-परम्परा के प्रतीक-से बन गए हैं। सिकन्दर ने पूछा—"आप बंदी हैं, आप के साथ कैसा सलूक किया जाय ?" उत्तर था—"जो सलूक एक वीर के साथ वीर करता है।" इतनी निडरता, इतना साहस, इतनी वीरता भारतीय परंपरा का सैनिक ही प्रकट कर सकता है। उसके बाद भारत पर अनेकानेक आक्रमण हुए, और भारत के वीर सैनिकों ने आक्रमणकारियों का डटकर सामना किया। परंतु ऐसा कहीं भी कोई उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें भारतीय सैनिकों ने पीठ दिखा कर कायरों की भांति जानें दी हों। हमारे देश का सैनिक-इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय सैनिक ने पीठ दिखाने की बजाय युद्ध में जान दे देना कहीं बेहतर समझा है। उसके रोम-रोम में वीरता और त्याग की भावना रही है। इससे भी आगे १८५७ के ग़दर का उदाहरण है, जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में सैनिकों ने अपने अपूर्व बलिदानों से इतिहास के पन्नों को अमर बना दिया है।

इसी भारतीय सैनिक-परंपरा से अंगरेज़ भी प्रभावित हुए। भारतीय सैनिक के जौहर प्रथम विश्व-युद्ध के समय संसार-भर

में प्रख्यात हुए। अंगरेजी लेखकों और अंगरेज्-अफसरों ने भारतीय सैनिकों की तारीफ में बहुत-कुछ लिखा है। भारतीय-सेना के विषय में अंगरेजों की बहुत ऊँची धारणा थी। अंगरेजी शासन में तो उस सैनिक को एक विदेशी के आदेश का पालन करना होता था, और सैनिक होने के नाते इसने कर्त्तव्य-पालन में कमाल कर दिखाया।

किन्तु आज तो भारत स्वतन्त्र है, स्वतन्त्र भारत का रक्षक भारतीय सैनिक है। उसके हृदय में देश और उसके झंडे के प्रति सर्वाधिक मान है। देश की रक्षा और देश की शांति के नाम पर वह अपने रक्त की एक-एक बूँद बिना उफ तक किये दे सकता है। इसका ताजा उदाहरण "काश्मीर की घाटी का युद्ध" है। काश्मीर भारत का अंग है, किन्तु जब पाकिस्तानी लुटेरों और हमलावरों ने सौंदर्य की उस अनन्य घाटी को रौंदना चाहा तो काश्मीर की सरकार ने भारत-सरकार से सहायता की प्रार्थना की। भारत-सरकार का आदेश पाते ही भारतीय-सेनाएँ मैदान में उतर पड़ीं। हमलावरों ने लूट-मार ही नहीं बल्कि बच्चों और स्त्रियों तक को बेइज्जत किया था। बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों की पुकार सुनाई पड़ने पर भारतीय सैनिक का रक्त ठंढा कैसे रह सकता है। वह तो युद्ध करता है, धर्म के लिए, पाप का नाश करने के लिए। भारतीय सेनाओं ने संपूर्ण घाटी में जिस वीरता और शान के साथ शत्रु का मुकाबला किया, उसकी कहानियाँ हमेशा जीवित रहेंगी। किसी भी मुकाबले में वह पिछड़ा नहीं, कहीं भी उसने कर्त्तव्य से मुँह नहीं मोड़ा, और इसी का नतीजा

यह हुआ कि शत्रु को घाटी से भागना पड़ा।

प्रस्तुत 'वीर-सिपाही" में भारतीय-सेना के वीर पुरुषों की कहानियाँ हैं। सरकारी विज्ञप्तियों में प्रकाशित घटनाओं के आधार पर सही तिथियों के साथ उन्हें रोचक बनाने का मैंने यत्न किया है। साथ ही यह भी कोशिश की है कि भारतीय परंपरा भी स्थिर रहे। मुझे विश्वास है, भारतीय सेना के जवान, और भावी सैनिक इन कहानियों को पढ़कर अपने अंदर नया जीवन और उत्साह उत्पन्न कर सकेंगे। अंततः, भारतीय सैनिक परंपरा को स्थिर रखने के लिए गीता के इन शब्दों को दोहराता हूँ—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा व भोक्ष्यसे महीम्।

अर्थात्, यदि युद्ध में काम आ गए तो स्वर्ग मिलेगा, और यदि जीवित रहे, तो जीवन-सुख की प्राप्ति।

—विचित्र

क्रम

परम-वीर-चक्र-विजेता

: १ :

मेजर सोमनाथ शर्मा

तीन नवंबर १९४७ की प्रातः का समय। चारों ओर सन्नाटा था। विश्व की सुन्दरतम काश्मीर-घाटी को बर्फ के कुदरती हमलों से पहले जीत लेने की हौंस से कबायली सभी दिशाओं में फैल चुके थे। भारतीय सेनाएँ जहाँ-तहाँ विरोधी का मुकाबला कर रही थीं। एकाएक समाचार मिला कि श्रीनगर और उसका हवाई-अड्डा भारी खतरे में है। विरोधी बहुत तेजी के साथ हवाई अड्डे की ओर बढ़ रहा है।

काश्मीर घाटी में बदगाम नाम का एक ग्राम है। श्रीनगर के लिए सैनिक-दृष्टि से यह गाँव विशेष महत्त्वपूर्ण स्थिति का था। इस स्थान पर मेजर सोमनाथ शर्मा एक फौजी-दल के साथ नियत किये गए थे। शत्रु ने भारी संख्या के साथ मेजर शर्मा के सैन्य-दल पर हमला बोल दिया। कहा जाता है कि इस सैन्य-दल और शत्रुओं की सेना में एक और सात का अनुपात था। इतनी थोड़ी संख्या और तिस पर तीन दिशाओं से हमला हुआ। तीनों ओर से गोलियों की वर्षा हो रही थी—और मेजर शर्मा विचलित नहीं

हुए, स्थिर रहे। ऐसे संकट में सच्चे वीर और साहसी ही अडिग रहते हैं। यदि मेजर शर्मा तनिक-सी भी व्याकुलता प्रकट करते तो सारा खेल बिगड़ जाता। उन्हींके भरोसे पर सबका जीवन था। और सबसे बढ़कर काश्मीर की राजधानी श्रीनगर की रक्षा का भार उन्हींके कंधों पर था। ऐसे घोर समय में उनके पराक्रम को देखकर प्रत्येक सैनिक अपने कर्तव्य के प्रति अडिग था। सबके चेहरों से तेज और शूरवीरता झलक रही थी।

विरोधी-आक्रमण होते ही शर्मा के सैन्य-दल ने उत्तर दिशा में गोलियाँ दागनी शुरू कीं। लगातार छः घंटे तक स्थिर रहकर मुकाबला हुआ। शत्रु की इतनी बड़ी संख्या जहाँ की-तहाँ अटकी रह गई। उसे एक इंच भी आगे बढ़ने का साहस न हुआ। इसी बीच मेजर शर्मा के लिए और कुमुक आ पहुँची।

अब क्या था, भारतीय वीरों का साहस चौगुना बढ़ गया। जैसे गोलियों और गोला-बारी का तूफान बरपा हो जाता है। घमासान युद्ध हो रहा था। मेजर शर्मा का हाथ पहले से ही घायल था। उस पर प्लास्टर चढ़ा हुआ था। प्लास्टर-चढ़ी बाँह को हिलाना कितना बड़ा खतरा है! किन्तु वीरों को खतरे की कब परवाह होती है! शत्रु की त्रि दिशी बौछार से उनका रक्त खौल उठा। उन्होंने फौरन ही बम-वर्षक हवाई जहाजों के संकेत के लिए शत्रु-आक्रमण की दिशाओं को अंकित किया। और उसके बाद, जब उन्होंने देखा कि उनकी फौज के आदमियों की संख्या कम हो रही है, तो खुद ही गोलियाँ और बारूद भरने पर

जुट गए। इस प्रकार गोलियाँ और बारूद भर-भरकर वह अपने सैनिकों को उत्साहित कर रहे थे। उनके अदम्य उत्साह को देखकर उनके सैनिक चौगुने उत्साह से शत्रु का सामना कर रहे थे।

o o o

युद्ध के क्षेत्र में कब क्या हो सकता है, इसको कौन जानता है। वहाँ तो केवल कर्तव्य का ही बोल-बाला होता है। कर्तव्य-पालन के सिवा कोई कुछ सोच भी नहीं सकता। यही दशा हमारे प्रस्तुत नायक मेजर शर्मा की है। जिस कर्तव्य-पालन के वशीभूत होकर उन्होंने अपने तन की सुध तक खो दी है, निश्चय ही, वह कर्तव्य-निष्ठा उन्हें प्रत्यक्ष मृत्यु का आलिंगन करने से भी विमुख नहीं कर सकती। कर्तव्य-पालन में जीवन और मरण का विवेक नहीं रह जाता। और तभी एकाएक मेजर शर्मा के बारूदखाने पर एक बम (मोर्टार) गिरा। बम-विस्फोट होते ही कर्तव्य-निष्ठ शर्मा इह-लोक से विदा हो गए। उनका शरीर भले ही शत्रु ने नष्ट कर दिया था, लेकिन उनकी वीरता, साहस और उत्साह तो अमर हो गए हैं। उनकी कर्तव्य-निष्ठा की भावना सदा जगमगाती रहेगी। दूसरों के लिए आदर्श बनी रहेगी।

मृत्यु से कुछ ही क्षण पूर्व उन्होंने अपने मुख्य कार्यालयों को यह संदेश भेजा था—"मैं एक इंच भी पीछे नहीं हटूँगा, शत्रु के एक-एक आदमी से डटकर मुकाबला करूँगा।" भारतीय

सेना के इतिहास में अपूर्व वीरता और साहस के लिए मेजर शर्मा का नाम "स्वर्ण-अक्षरों" में लिखा जायगा। माँ के दूध की लाज रखने वाले तो विरले ही होते हैं।

प्रस्तुत युद्ध के समय मेजर सोमनाथ शर्मा कुमाऊँ-रेजिमेंट के चतुर्थ सैन्य-दल से संबंधित थे। २६ जनवरी १६५० को भारतीय गणतंत्र की ओर से उन्हें भारत का उच्चतम सैनिक-मान दिया गया, अर्थात् मरणोपरान्त "परम-वीर-चक्र।"

: २ :

लान्स-नायक कर्मसिंह

"जाको राखे साइयाँ मार न सकिहै कोय," अरे इतनी बम-वर्षा! केवल एक चौकी पर! यह चौकी थी तिथवाल के इलाके में। गिने-चुने जवान और उनका अधिनायक था लान्स-नायक कर्मसिंह। बम-वर्षा तक ही बात चुक जाती तो खैर थी। लेकिन उसके फौरन ही बाद हमला हो गया। तनिक हमलावरों की संख्या का अनुमान तो कीजिए। कहाँ एक और कहाँ दस। यही था अनुपात हमारे नायक कर्मसिंह के सैन्य-दल और आक्रमणकारियों के बीच!

हमला हुआ। पूरे जोरों के साथ हमला हुआ। लेकिन हमारा दल तिल भर भी पीछे नहीं हटा। बारंबार शत्रु ने हमला किया

किन्तु हर बार उसे मुँह की खानी पड़ी। उसे लौट-लौट जाना पड़ा और हमारी सेना की टुकड़ी अपने स्थान पर अडिग-अचल बनी रही। यह मुकाबला संख्या का संख्या के साथ नहीं था; मुकाबला तो वीरता और साहस के साथ वीरता और साहस का था। लेकिन जब कोई तादाद के बल पर वीरता और साहस का सामना करना चाहे, तो स्वभावत: वह दुर्बल बन सकता है।

हमारी सेना ने जमकर मुकाबला किया। दुश्मन के पाँव उखड़ गए, किन्तु हमारे वीर असावधान नहीं थे। वह जानते थे कि पीछे हटने वाले शत्रु से मुकाबला करते रहने वाले शत्रु की अपेक्षा अधिक सावधान रहना चाहिए। यह बात बिलकुल ऐसी है, कि सिंह के शिकार के समय, जब कभी सिंह के लिए अन्य कोई चारा नहीं रहता, और वह आक्रमणकारी पर हमला करने की सोचता है, तो वह एकाएक दुबक-सा जाता है, और अपने अग्रभाग को पिछली टाँगों की दिशा में सिकोड़ लेता है। कच्चे शिकारी अक्सर ऐसे समय मार खा जाते हैं। ठीक यही दशा पीछे हटने वाले शत्रु की होती है। और तब, थोड़े ही समय बाद दूसरा हमला हुआ। कर्मसिंह की युद्ध-सामग्री का भी अंत निकट था। गोला-बारूद की जो पूँजी उस समय थी, उसमें वृद्धि हो सकना असम्भव था। इस भीषण गोला-बारी के समय सहायता भी आती तो कैसे? तिस पर एक साथी समेत कर्मसिंह घायल हो चुके थे। ऐसी असहाय दशा में भी कर्मसिंह ने अपने मस्तिष्क को स्थिर रखा। उन्होंने लगातार अपने साथियों को सचेत किया;

उन्हें मृत्यु पर खेल जाने की प्रेरणा की। कर्मसिंह बोले—"यह जीवन बारंबार नहीं मिलता। कर दिखाने का यही अवसर है। जो कर दिखाते हैं, संसार उन्हींका लोहा मानता है। वही वीर होते हैं। और संसार में मृत्यु के उपरान्त वीरों की पूजा होती है, और होती रहेगी।"

मानो सब साथियों में नया जीवन आ गया। हर-कोई शत्रु का सामना करने के लिए सामने आ गया। हथ-गोलों (ग्रेनेड) से युद्ध शुरू हुआ। हमलावर हैरान थे। इतना भीषण साहस—जैसे मौत को खेल ही समझते हों! और उन्होंने एक और हमला किया। पूरा जोर के साथ तीसरा हमला हुआ। मोर्चे की रक्षा करने वाली रेतीली बोरियों की दीवारें प्रायः सारी-की-सारी नष्ट हो चुकी थीं। खंदकों की हालत यह थी कि मुँह तक भर चुकी थीं। लेकिन भारतीय योद्धा ने निरुत्साह होना तो सीखा ही नहीं। कर्मसिंह ऐसे मौके पर घबराए नहीं, स्थिर रहे, दृढ़ रहे। जब-जब भी शत्रु ने बढ़ने की कोशिश की, और उसे अधिकाधिक पीछे हटना पड़ा। कर्मसिंह खुद भी लड़ रहे थे, और इधर-उधर जा-जाकर घायल साथियों को उत्साहित कर रहे थे।

इस प्रकार, दोपहर तक शत्रु ने चार बार हमला किया—हर बार एक-से-एक भीषण हमला था। और इन चार हमलों में कर्मसिंह दो बार घायल हो चुके थे। घावों की उन्हें चिंता कहाँ थी!

इधर शत्रु ने भी ठान ली थी। उसकी संख्या बहुत थी।

तिस पर, लगातार उसे कुमुक पहुँच रही थी। अब उसने पाँचवीं बार आक्रमण किया। इस हमले का रूप तो मानो वास्तविक वीरता की परीक्षा थी। दो आक्रमणकारी ठीक कर्मसिंह की खंदक के बाहर ही आ पहुँचे। उन पर छिपे-छिपे गोली चलाना भी कोई वीरता है ? कदापि नहीं। भागते शत्रु तक को मारना भारतीय वीर अपना अपमान समझता है। और कर्मसिंह खंदक से बाहर आ गए। उन्होंने दोनों को पल ही भर में संगीन से मौत के घाट उतार दिया।

इतने पर भी शत्रु को चैन नहीं था। उसने पाँच के बाद छठा, सातवाँ और आठवाँ हमला किया। आठों बार के हमलों में विजय का पाँसा हमारे वीर के पक्ष में रहा। हर बार शत्रु ने विजय के लिए आक्रमण किया किन्तु शत्रु पराजित होता रहा। अपने उच्च सैनिक अधिकारियों के शब्दों में "वह अपने साथियों के लिए प्रेरणा रूप थे, और शत्रु के लिए आतंक !"

तिथवाल क्षेत्र में, १३ अक्तूबर, १९४८ की यह घटना हमारे सैनिक-इतिहास की अपूर्व घटना है। इस असाधारण साहस एवं वीरता के लिए सिख-रेजिमेंट के प्रथम सैन्य-दल से संबंधित लान्स नायक कर्मसिंह को भारतीय गणतंत्र की ओर से २६ जनवरी, १९५० को "परम-वीर-चक्र" के उच्चतम सैनिक-मान द्वारा सम्मानित किया गया।

भारत की भावी संतति राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले वीरों का सदैव स्मरण करती रहेगी।

: ३ :

नायक जदुनाथसिंह

राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने १९४२ के महान् आन्दोलन की शुरुआत इन शब्दों के साथ थी—"करो या मरो !" इस मूलमंत्र ने भारतीयों को कर्तव्यनिष्ठ होना सिखाया; जीवन तो नाशवान है, लेकिन 'करना' सदा जीवित रह जाता है। मरना तो है ही, फिर 'कर' के क्यों न मरा जाय ! और फिर दुनिया ने देखा है कि "करो या मरो" के बल पर भारत ने किस प्रकार आजादी प्राप्त की। संसार के सभी क्षेत्रों में "करो या मरो" का मूलमंत्र सफलता का एक-मात्र साधन है। भारत की आजादी केबाद इसका जीवित उदाहरण काश्मीर-घाटी का युद्ध है। इतने लम्बे-चौड़े और पहाड़ी क्षेत्र से शत्रुओं को निकाल बाहर करना कुछ सहज काम नहीं था। यदि भारतीय सेना के रण-बाँकुरे "करो या मरो" के मंत्र-बल से न बढ़ते, तो दुनिया-भर में सब से खूबसूरत काश्मीर-घाटी से शत्रुओं को खदेड़ना कठिन हो जाता।

घटना बहुत पुरानी भी नहीं। फरवरी १९४८ की ही है। नौशहरा की प्रतिरक्षा (Defencc) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी। किन्तु नगर-प्रवेश की रक्षा के लिए भारतीय सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी मौजूद थी और उसके मुकाबले में आक्रमणकारियों (हमलावरों) की संख्या कई गुना थी। भला थोड़े-से वीर नगर

की क्यों कर रक्षा करेंगे, यह समस्या सबके सामने थी। नायक जदुनाथसिंह के आदेश में एक अग्रणी दल था। और दूसरी ओर दुश्मनों की संख्या ५०० से भी अधिक।

दुश्मन ने इस प्रतिरक्षा-पंक्ति (Defence line) को भेदने की हर संभव कोशिश की। उसने रह-रहकर पूरी शक्ति के साथ हमले किये। उसने बार-बार संख्या के जोर पर हमले की लहर से प्रतिरक्षा की चट्टान को तोड़ देना चाहा। किन्तु प्रतिरक्षा की वह चट्टान हिमालय की तरह अचल थी। शत्रु आगे बढ़ता और चट्टान की दृढ़ता उसे पीछे ढकेल देती। दुश्मन को लगा कि यह प्रतिरक्षा की चट्टान मीलों तक फैली हुई है। काश, वह जान पाता कि केवल अंगुलियों पर गिने जा सकने वाले भारतीयों ने हिमालय-जैसा रूप धारण कर रखा है।

नायक जदुनाथ ने ऐसी आपत्ति के समय अपूर्व कुशलता का परिचय दिया। उन्होंने अपनी टुकड़ी को इस ढंग से फैला दिया कि मानो सैनिक सारी पहाड़ी खंदकों में फैले हुए हैं। उनकी निरन्तर गोलियों की बौछार से शत्रु-सेना के पाँव उखड़-उखड़ जाते थे। और अखीर में शत्रु का दम टूट ही गया। उसके पाँव लड़खड़ाए, उसमें टक्कर लेने का साहस न रहा; तो भगदड़ मची। मानो उनकी हर गोली टकरा-टकराकर उन्हीं को लगने लगी।

इधर शत्रु-दल का दम टूटा, और उधर जदुनाथसिंह और भी सावधान हुए। उन्होंने साथियों को एक बार पुनः ललकारा। पहले ही इतनी थोड़ी संख्या थी और तिस पर इस बीच कुछ

घायल हो चुके थे और कुछ को वीर-गति प्राप्त हो चुकी थी। जदुनाथ की आँखों से जैसे शक्ति प्रवाहित हो रही थी। उनके रहे-सहे साथियों का साहस कई गुना बढ़ गया था। और तभी शत्रु ने जान की बाज़ी लगाकर एक और हमला किया। और वह हैरान था, यह प्रतिरक्षा-पंक्ति तनिक भी ढीली नहीं पड़ती। इस चट्टान में एक दरार भी तो दिखाई नहीं देती। किन्तु जब तक जान में जान है, यह पंक्ति दुर्भेद्य ही बनी रहेगी।

अब अवस्था यह थी, कि वीर जदुनाथ के सब साथी काम आ चुके थे। कोई घायल, कोई भीषण घावों के कारण अशक्त, और कोई कर्तव्य-पालन के लिए मर मिटा था। अब जदुनाथ अकेला था। अरे अकेला नहीं "सवा लाख, जदुनाथ सवा लाख थे।" जदुनाथ को लगा कि उनके शरीर में "सवा लाख" सैनिकों की शक्ति का संचार हो गया है। जिसका खुद का शरीर घायल हो, जिसके साथियों की यह दशा हो; उसके रक्षक भगवान हैं। वही उसे शक्ति और साहस प्रदान करते हैं।

हमलावरों की संख्या बढ़ गई थी। उन्होंने संख्या के बल पर यह बाजी जीतने का दाँव लगाया था। उन्होंने आखिरी बाजी लगाई। उन्होंने सारी ताकत लगाकर आखिरी हमला किया। और काश, उन्हें पता हो जाता कि उनकी इतनी बड़ी तादाद का मुकाबला करने वाला महज एक इन्सान है, जो सही मानों में सच्चा इंसान था, तो शायद वह शर्म से सिर झुकाए बिना न रहते।......

वीर जदुनाथ का खून खौल उठा। इस भीषण हमले का सामना उन्हें करना ही था; और वह निकल आये खंदक से बाहर। हाथों में स्टेनगन थी। हृदय में "करो या मरो" का मंत्र था। शत्रु-दल प्रतिरक्षा-पंक्ति से केवल १५ गज के फासले पर था। इतनी वीरता! इतना साहस! अकेला ही जूझने निकला मतवाला जदुनाथ! और मतवाले जदुनाथ ने गोलियों की झड़ी लगा दी, बौछार कर दी। प्रलय मचा दी जदुनाथ ने। भला वीरों की हार हो सकती है? कदापि नहीं। इस गोली-कांड से शत्रु के पाँव एकदम उखड़ गए। शत्रु की खंदकों में भगदड़ मच गई। वह भाग रहा था - गीदड़ों की तरह! सिंह-जदुनाथ का शरीर घावों से छलनी था। लहू बह रहा था। किन्तु स्टैनगन अपना कार्य कर रही थी। अचानक एक गोली लगी जदुनाथ के सिर में। मानो उनकी दुर्भेद्य प्राचीर उनका दिमाग था। और दिमाग फटते ही जदुनाथ का स्थूल शरीर धराशायी हो गया। उनकी प्राण-रहित आँखें भागते शत्रु की पीठ देखकर अंदर-अंदर खुश हुईं और सदा के लिए मुँद गईं। नौशहरा नगर की रक्षा के लिए वीरों ने अपने रक्त की एक-एक बूँद तक न्यौछावर कर दी। बाद में देखा गया कि जदुनाथ के शरीर पर आठ घाव थे।

नायक जदुनाथसिंह का जन्म खजूरी नामक ग्राम, जिला शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इस सैनिक-कार्यवाही के समय जदुनाथ राजपूत-रैजिमेंट से संबंधित थे।

उनकी असाधारण वीरता और राष्ट्र-सेवा के उपलक्ष में १८ दिसंबर, १९५० को मरणोपरांत "परम-वीर-चक्र" प्रदान किया गया। सैनिक-सम्मान की दृष्टि से भारतीय गणतंत्र-राज्य का यह उच्चतम मान है।

: ४ :

हवलदार मेजर पीरूसिंह

तिथवाल के दक्षिण में एक स्थान पर दुश्मन का कब्जा था। वहाँ तक पहुँचने के सभी रास्तों पर एम० एम० जी० तैनात थीं। खंदकें खोदकर दुश्मन के सैनिक बेफिक्र थे। एकाएक उन पर हमला करना बहुत मुश्किल था। एक तो पहाड़ी जगह, और दूसरे रात का समय। तय हुआ कि दुश्मन पर हमला किया जाय। राजपूताना-राईफल्स की छठी बटालियन की डी कम्पनी इस काम पर तैनात की गई। हवलदार मेजर पीरूसिंह की अध्यक्षता में कम्पनी ने हमले के लिए कूच किया। कुछ ही फासले तक बढ़ने पर दोनों दिशाओं से भयंकर बम-वर्षा होने लगी। शत्रु-खंदकों से हथगोलों की भरमार होने लगी। उस समय पीरूसिंह सबसे अग्रणी दल में थे। लगातार हथगोलों की वर्षा ने इस दल के आधे से ज्यादा आदमियों को या तो मार डाला अथवा घायल कर दिया।

लेकिन पीरूसिंह अविचल गति से आगे ही आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने बचे-खुचे जवानों को उत्साहित किया। युद्ध के जय-घोषों से पहाड़ी-प्रदेश गूँज उठा। उनके जय-घोषों की ध्वनि ने अंधकार में ढके पर्वतों से टकरा-टकराकर उनके दिलों को सौ-गुना उत्तेजित किया। पीरूसिंह ने साथियों से कहा—"वीरो! शत्रु को कुछ कर दिखाने का यही वक्त है। हमारे जो साथी काम आ चुके हैं, उनका बदला अगर हम नहीं लेंगे, तो किस मुँह को लेकर हम जीवित रहेंगे। अगर आप में देश-भक्ति की हौंस है, यदि आप भारत-माता के सच्चे सपूत हैं, तो बढ़े जाओ, बढ़े जाओ। मृत्यु तो कायरों को मार सकती है। वीर तो अमर है, सदैव अमर रहता है।" और हवलदार पीरूसिंह के शब्दों ने साथियों में बिजली-जैसी शक्ति पैदा कर दी। उन्होंने आन-की-आन में शत्रु की एम० एम० जी० स्थिति पर कब्जा कर लिया। लेकिन यह सौदा सस्ता नहीं था। हथगोलों की चिनगारियों से उनके शरीर पर अनेक घाव हो गए थे। उनके वस्त्र चिनगारियों से जहाँ-तहाँ जल चुके थे। लेकिन शरीर की चिंता किसे थी। शरीर तो महज मिट्टी का पुतला है। उसका मोह वीर सैनिक को नहीं होता। और पीरूसिंह अपने-आपको भूलकर आगे-ही-आगे बढ़ते गए। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि शत्रु के उस स्थान पर पहुँचना है, जहाँ से हथगोलों, गोलियों और बमों की वर्षा के कारण उनके साथी हताहत हुए थे। शत्रु के घेरे में जाकर वह व्याकुल नहीं हुए, घबराए नहीं। वह सिंह की तरह बम-वर्षकों पर झपटे और आँख झपकने

की देर में संगीन से उन्हें मृत्यु का ग्रास बना दिया। जिस तोप के दम पर शत्रु को भरोसा था, वह ठंडी पड़ गई।

और तभी, पीरूसिंह ने देखा। वह एकदम अकेले हैं। उनके दल के साथी या तो मारे गए थे अथवा घायल हो चुके थे। उनका अपना हाल यह था कि घावों से निरंतर रक्त बह रहा था। पर घावों की ओर आँख उठाने तक का समय नहीं था। अकेले थे, तो क्या? शत्रु से बदला लेने का भी यही मौका है। बिजली की तरह यह दिमाग में आया। और इस विचार के आते ही एक हथगोला उन पर गिरा। हथगोला उनके मुँह पर लगा। आँखों से रक्त की धाराएँ फूट निकलीं। पीरूसिंह के चेहरे के घावों से उनका मुँह तमतमा उठा। जैसे ग्रीष्म में दोपहर के रवि की किरणों की ओर आँख उठाने से नेत्र-ज्योति मंद पड़ जाती है, इसी प्रकार पीरूसिंह के चेहरे की रक्त-धाराओं से शत्रु की आँखें चौंधिया गईं। पीरूसिंह में अनायास ही अनंत साहस भर गया।

वह खंदक से कूदकर बाहर आ गए और शत्रु के अगले मुहासरे पर उन्होंने हथगोला फेंका। और इधर उच्च-स्वर में युद्ध-घोष करते हुए वह शत्रु की अगली खंदक में कूद गए। शत्रु की खंदक में कूदना कोई सहज नहीं। शत्रु को लगा, जैसे काल उनके सिर पर नाच रहा है। पीरूसिंह की विकराल मूर्ति को देखकर उनकी हवाइयाँ उड़ गईं। और पीरूसिंह ने आँख झपकने की देर में ही संगीन से दो का काम तमाम कर दिया।

पीरूसिंह के इस पराक्रम को 'सी कम्पनी' के कमांडर ने अपनी

आँखों देखा था। वह 'डी कम्पनी' की मदद के लिए शत्रु-स्थिति पर गोला-बारी का निर्देशन कर रहे थे। कमांडर ने देखा कि पीरूसिंह एक के बाद दूसरी, और दूसरी के बाद तीसरी खंदक पर सिंह की तरह झपटता हुआ शत्रुओं को मौत के घाट उतार रहा है। और तब अनायास ही उनके मुँह से निकला—"पीरूसिंह, तुम सही मानो में वीर हो।"

और उन्होंने देखा कि पीरूसिंह अब तीसरी खंदक पर झपटा है। अभी एक पाँव खंदक के किनारे पर ही टिक पाया था कि एक गोली पीरूसिंह के सिर के आर-पार हो गई। उनके मस्तिष्क से रक्त का फव्वारा-सा फूट गया, और वह शत्रु की तीसरी खंदक पर सदा के लिए सो गए। किन्तु इस अनंत निद्रा में सोने के साथ ही एक धमाका हुआ। इस भीषण धमाके ने यह साबित कर दिया कि पीरूसिंह का आखिरी वार भी खाली नहीं गया। शत्रु-की वह तीसरी खंदक भी सूनी पड़ गई थी।

धन्य हैं पीरूसिंह! धन्य हैं पीरूसिंह की जननी! भारत की ललनाओं के ऐसे वीर-पुत्रों ने ही भारत का मस्तक ऊँचा किया है। उनकी अनुपम वीरता और साहस देश के सेनानियों के लिए आदर्श बन गया है। इस विलक्षण पराक्रम के उपलक्ष में २६ जनवरी १९५२ को हवलदार पीरूसिंह मरणोपरान्त "परम-वीर-चक्र" द्वारा सम्मानित किये गए।

हवलदार पीरूसिंह पिलानी के निकट बेरी नामक ग्राम के रहने वाले थे। गत २६ जनवरी १९५३ को भारत-गणतन्त्र के

राष्ट्रपति ने उनकी ७० वर्षीय माता को "परम वीर-चक्र" का पदक भेंट किया। ऐसे वीर नर-रत्नों पर किसी भी देश को गर्व हो सकना अवश्यम्भावी है। हवलदार पीरूसिंह का यशः शरीर उनके अनन्य बलिदान के कारण युग-युग तक अमर रहेगा। उनकी बलिदान-गाथा भारत के युवकों को सदा-सर्वदा प्रेरणा देती रहेगी।

महावीर-चक्र-विजेता

: ५ :

ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह

अक्तूबर १९४७ की घटना है। पाकिस्तानी आक्रमणकारी टिड्डी-दल की तरह बढ़े आ रहे थे। जम्मू-काश्मीर की राजधानी श्रीनगर पर अधिकार करना उनका लक्ष्य था। भारतीय सेनाएँ अभी व्यवस्थित रूप से सभी मुहासरों पर नहीं पहुँच सकी थीं। कबायली आँधी की तरह काश्मीर-घाटी को रौंदते हुए बढ़ रहे थे। श्रीनगर पर कब्ज़ा कर लेने की बाजी लगी हुई थी।

उन दिनों ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह जम्मू और काश्मीर की सेनाओं के चीफ ऑफ स्टाफ थे। उन्हें आदेश मिला कि वह कबायलियों के मार्ग को रोकें और श्रीनगर की रक्षा करें। दूसरी ओर, दोमेल छावनी पर चारों दिशाओं से भयंकर हमला हो चुका था और उसे फौरन ही सहायता पहुँचाने की बड़ी भारी आवश्यकता थी।

ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह ने तत्काल अपने आदमियों को जमा किया। उन्होंने महाराज से प्राप्त आज्ञा को पढ़कर सुनाया। उनके स्वर में वीरता की भावना थी। उनकी वाणी में ओज था। सुनने

वालों के अंग-अंग फड़क उठे। सबके चेहरों पर शत्रु से लोहा लेने की भावना चमक उठी। और "टु आर्म्स" (To arms — युद्ध की तैयारी का आदेश) की गूँज से न केवल नियमित सैनिक, बल्कि पाचक, रसोइए और अन्य अ-सैनिक कार्यकर्ता बात-की-बात में लैस होकर जमा हो गए। और आपको यह जान-कर महान् आश्चर्य होगा कि टिड्डी-दल की तरह बढ़ने वाले कबाय-लियों का मुकाबला करने वाले इन साहसी वीरों की संख्या कुल मिलाकर १५० थी।

ब्रिगेडिर राजेन्द्रसिंह जानते थे कि शत्रु का मुकाबला करने के लिए यह संख्या नाम-मात्र है। लेकिन अपने सैनिकों के मर-मिटने के अपूर्व उत्साह को देखकर उन्हें लगा कि उनकी सेना असंख्य है। वीरता और साहस के सामने गिनती जैसी बात की कौन परवाह करता है ? वहाँ तो मर-मिटने की हौंस होती है। शत्रु को रौंदने का अतुल बल होता है। और इसीलिए उनकी फौजी टुकड़ी के प्रत्येक सैनिक के मुँह पर "तख्त या तख्ता" था, अर्थात् विजयी होंगे, तो विजय-सुख लाभ करेंगे अन्यथा वीर-गति को प्राप्त होंगे। और इन भावनाओं के साथ वह अपने सैन्य-दल के साथ दोमेल की सहायता के लिए रवाना हो गए।

गढ़ी के निकट इस टुकड़ी की शत्रु से मुठभेड़ हो गई। राजेन्द्र-सिंह के सैन्य-दल ने डटकर मुकाबला किया। किन्तु इसी बीच शत्रु की सहायता के लिए और कुमुक आ गई। और इधर ब्रिगेडि-यर निकले थे केवल १५० सैनिक लेकर। इनकी सहायता के लिए

कुमुक पहुँचने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। लाचार उन्हें गढ़ी से तीन-चार मील पीछे हटना पड़ा। शत्रुओं की संख्या कई गुना बढ़ चुकी थी और जिस जी-जान से इस छोटे-से दस्ते ने मुकाबला किया था, उसके कारण इसकी संख्या और भी कम हो चुकी थी।

इसके बाद, ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह अपने बाकी सैनिकों को लेकर बारामूला की दिशा में बढ़े, और वहाँ छोटी-सी कुमुक प्राप्त हुई। इससे उनका उत्साह और भी बढ़ा। उन्होंने नये सिरे से अपने दस्ते का संगठन किया और उरी की ओर बढ़े। इस दिशा में बढ़ते हुए उन्होंने उरी के पुल को नष्ट कर दिया। इससे शत्रु एकाएक बढ़ने की स्थिति से रुक गया। इस स्थान पर वह प्रति-रक्षात्मक (Defence line) मुहासरे की स्थिति में डट गए। उन्होंने और उनके वीर सैनिकों ने दृढ़ निश्चय किया कि जब तक जान-में-जान है, लड़ते रहेंगे।

लगातार चार घंटे तक गोलियों की बौछार होती रही। हमारे वीरों ने तो मानो आग ही बरपा कर दी थी। तिस पर भी, ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह के दस्ते को महूरा और उसके बाद रामपुर की दिशा में हटना पड़ा। सभी ओर अंधेरा-ही-अंधेरा था। हाथ को हाथ नहीं सूझता था किंतु इस दस्ते ने उस अंधकार में ही खंदकें खोद डालीं। खंदकों का आसरा पा जाने पर लगातार ग्यारह घंटे के घमासान युद्ध में ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह के कई वीर काम आये। फिर भी वह और उनके बाकी साथी निराश नहीं हुए। उन्होंने

पुन: उसी दिशा में हटने का निश्चय किया कि जहाँ पहले भी शत्रु से सामना हो चुका था। अभी वह दो सौ गज ही जा पाए थे कि उनके दाहिने हाथ और दाईं टाँग में एक-एक गोली लगी। गोली क्या लगी, उनमें और भी शक्ति का सञ्चार हो गया। भयंकर रूप से घायल होने पर भी वह अपने साथियों को उत्साहित करते रहे। रह-रहकर, गोलियों की तड़ातड़ बौछार में राजेन्द्रसिंह उन्हें कहते—"शत्रु को जीते-जी बढ़ने न देना, जमे रहो।"

धीरे-धीरे उनके दस्ते के सब आदमी निश्चित जगह पर पहुँच गए थे। वह घायल थे—बाँह से रक्त की धारा बह रही थी। टाँग की हड्डी टूट चुकी थी। धरती पर लहू बह रहा था। अब उस स्थान पर अकेले राजेन्द्रसिंह रह गए थे। वह अब भी अपने निश्चय के प्रति अविचल थे। उनकी इच्छा थी कि सब आदमियों के हट जाने पर अन्त में मैं हटूँगा। और तभी, एकाएक शत्रुओं ने उन्हें घेर लिया। राजेन्द्रसिंह घायल और असहाय दशा में शत्रु के हाथों पड़ गए। लेकिन वह कर्तव्य तो पूर्ण कर चुके थे। उन्हें सौंपा गया था कि शत्रु को श्रीनगर की ओर बढ़ने से रोकें। उन्होंने एक छोटे-से दस्ते के बल पर इतना बड़ा काम पूरा किया था। उन्होंने इसी दस्ते के सहारे निरन्तर ७२ घंटे तक शत्रु का मार्ग रोका। धन्य है वीर राजेन्द्रसिंह और उनके साथी!

ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह के साथ शत्रु ने क्या व्यवहार किया, इसका आज तक पता नहीं चल सका। लेकिन उनकी वीरता के गीत सैनिक गाते हैं। उनके महान् साहस की कहानियाँ सैनिकों

की जबानी जहाँ-तहाँ सुनने को मिल जाती हैं।

उनके बचे-खुचे साथी उनकी वीरता की चर्चा करते समय अश्रुपूर्ण हो-हो जाते हैं। जम्मू-काश्मीर राज्य की सेनाओं में हर कोई उन्हें देवता मानता है।

भारत सरकार ने उनकी वीरता, धीरता, साहस, दृढ़ निश्चय और कर्तव्य-पालन तथा श्रीनगर की रक्षा के उपलक्ष में २५ फरवरी, १९५० को मरणोपरान्त "महावीरचक्र" द्वारा विभूषित किया।

ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह काश्मीर के शासक-वंश जमवाल राजपूत परिवार के सदस्य थे। उनके पुरखाओं ने अनेक युद्धों में वीरता प्रदर्शित की थी। जब वह चार ही वर्ष के थे, तो उनके माता-पिता उन्हें चाचा के हवाले करके संसार से विदा हो गए थे। उनके चाचा ने अत्यधिक स्नेहवश उनका पालन-पोषण किया। कहते हैं, राजेन्द्रसिंह अपने आरम्भिक जीवन से ही सादगी और अनुशासन में रहना पसन्द करते थे। इसी कारण सिपाही, और एक मनुष्य—दोनों ही रूपों में सब-कोई उन्हें प्यार करता था।

: ६ :

सूबेदार शवंग रिंचन

एक-दो नहीं, पाँच-सात भी नहीं, बल्कि लगातार तेईस दिन तक शत्रु से लोहा लेना खाला जी का घर नहीं था। और तेईस दिन के बाद शत्रु बढ़ा नहीं, अपनी जगह पर जमा भी न रह सका, तो वह पीठ दिखा कर भाग खड़ा हुआ। मातृ-भूमि की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाने वालों के सामने अन्यायी शत्रु कायर बन जाता है। जिन्होंने सिर पर कफन बाँधा हो, उनका मुकाबला करना सहज नहीं होता। ऐसों के सामने तो बड़े-बड़ों के हौसले पस्त हो जाते हैं। फिर कबायली तो महज भाड़े के सिपाही थे। उनमें न तो सचाई का दम था, न ही उनके सामने देश-भक्ति, राष्ट्र-भक्ति, अथवा मातृ-भूमि की रक्षा-जैसा कोई आदर्श था। वह तो लड़ रहे थे, लूट-मार के लिए, वह लड़ रहे थे रोटियों के लिए। और रोटी का टुकड़ा मुँह में पड़ते ही जैसे कुत्ते का भौंकना बन्द हो जाता है, यही हालत किराए के सैनिकों की होती है।

नुबरा-घाटी पर अधिकार करने के लिए हमलावर आँधी की तरह बढ़ रहे थे। उन्हें रोकना ही नहीं, उन्हें उल्टे पाँव भगा देना कोई सहज नहीं था। पहाड़ों के चप्पे-चप्पे में फैले हुए शत्रु का मुकाबला करना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे मौके पर हवाई-जहाजों की बम-वर्षा भारी सहायता कर सकती है। लेकिन जिन

साहस और वीरता के पुतलों ने हवाई-सहायता के बिना ही शत्रु को मार भगाया, वह न तो कुशल सैनिक थे, न ही उन्होंने लड़ाइयों में हिस्सा लिया था। वह तो थे निरे बालक, जिनकी उम्र १६ और २० वर्ष से कम थी। कोई १८ का, कोई १६ का और कोई १७ ही वर्ष का था। और इन वीर बालकों का नेता १६ वर्षीय श्वंग रिंचन था।

रिंचन स्कूल में पढ़ता था। बल्कि पढ़ रहा था। जम्मू-काश्मीर की सरकार ने रक्षा-दल बनाए। मातृ-भूमि की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध रक्षा-दलों में भरती होने लगे। मातृ-भूमि की रक्षा की पुकार को सुनकर हर कोई व्याकुल हो उठा। और हमारी कथा का नायक श्वंग रिंचन भी स्कूल छोड़कर रक्षा-दल में भरती हो गया।

अगस्त १६४८ में कबायली नुबरा-घाटी पर अधिकार करना चाहते थे। श्वंग रिंचन ने अपने दोस्तों को, साथियों को जमा किया। सब मिलाकर अठारह की गिनती हो गई। रिंचन नेता था और उसके सत्रह सैनिक घाटी के प्रवेश-मार्ग पर जा जमे। खारूनुल्ला पर प्राण रहते जमे रहने की प्रतिज्ञा करके वह डट गए। दुश्मन ने बीसियों हमले किये, बीसियों बार चाहा कि वह अबोध बालकों की इस दुर्ग-प्राचीर को ढाकर निकल जाय, लेकिन इस दुर्ग की प्राचीर में सुई के नक्के-जितना भी छिद्र न हो सका। और अंत में उसे लौट जाना पड़ा। रिंचन और उसके साथियों के हौसले बेहद बढ़ गए। और इधर सरकार ने महसूस किया कि

महज़ लड़के नहीं, ये किसी भी सधे हुए सैनिक से कम नहीं हैं।

और उसके बाद, सितम्बर १६४८ में, रिंचन को इससे भी ज्यादा कठिन कार्य सौंपा गया। उसे हुक्म मिला, कि वह १७ हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित एक स्थान पर पहुँचे। उस जगह पर शत्रु का कब्ज़ा है। शत्रु को भगाकर उस पर अधिकार किया जाय। कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी का यह काम था। कहाँ तो स्कूल में पढ़ने वाला छात्र रिंचन, और कहाँ यह युद्ध की जटिलताएँ। दोनों कितनी बेमेल हैं। दोनों में कितनी असमानता है, लेकिन जिनके दिल में लगी होती है, वह इस असमानता को अपने दिमाग में आने तक नहीं देते।

कितना भयंकर और दुर्गम था यह मार्ग। चारों ओर बरफ-ही-बरफ। रिंचन और उसके साथी बढ़े तो बढ़े ही चले गए। हमलावर एक लामा-हाउस में जमकर बैठे हुए थे। रिंचन और उसके सैन्य-दल ने एकाएक हमला बोल दिया। दुश्मन को जान बचानी मुश्किल हो गई। वह भागा। उसके बहुत-से आदमी मारे गए और रिंचन ने उस जगह पर अधिकार कर लिया। इस जीत के बाद रिंचन के लिए युद्ध में जीतना बाँए हाथ का खेल बन गया। अब तो उसके हौसले का क्या ठिकाना !!

उसके बाद, उसी साल यानी १६४८ के दिसम्बर में रिंचन को हुक्म हुआ कि बियगडाँडो के निकट बहुत ऊँचाई पर एक चौकी है। इस चौकी पर भी दुश्मन का कब्ज़ा है। दुश्मन को इस चौकी से हटाकर उस पर अधिकार करो। रिंचन को तो

हुक्म की देर थी, और वह अपने साथियों के साथ रवाना हो गया। या खुदा, बर्फ ने भी रिंचन का ही रास्ता रोकना था! नहीं-नहीं, बर्फ क्या रास्ता रोक सकती है। वह तो महज़ पानी था। वह और उसके साथी बढ़े चले गए। नैपोलियन की तरह उन्होंने आगे-ही-आगे बढ़ना सीखा था। अनेक-अनेक बर्फीले मार्गों को लाँघता हुआ रिंचन अपने साथियों सहित ठीक जगह पर जा पहुँचा और हमला बोल दिया। बात-की-बात में रिंचन ने उस चौकी पर भी अधिकार कर लिया।

लेकिन अभी शत्रु जहाँ-तहाँ फैले हुए थे। हुक्म मिला कि जहाँ कहीं भी शत्रु हो, उसे निकाल बाहर करो। रिंचन को पता चला कि लेह की तहसील में शत्रु अड्डा जमाए बैठा है। यह स्थान समुद्र-तट से लगभग २३ हज़ार फुट की ऊँचाई पर था। २३ हज़ार फुट की ऊँचाई, और तिस पर बर्फ पड़ने के दिन। इस दुर्गम-पथ को माई के लाल ही पार सकते थे। दस्ते के आधे से ज्यादा आदमी बर्फ के कारण घायल हो गए। उनके पाँव जम-से गए। उनमें लहू बहना तक बंद होगया। फिर भी लड़-खड़ाते पाँव से फौजी दस्ता बढ़ता गया—आगे-ही-आगे। रिंचन का सैन्य-दल चुपचाप वहाँ जा पहुँचा। शत्रु बे-खबर था। उसे क्या पता था कि साक्षात् मृत्यु से खेलने वाले अल्पायु बालक उनके काल बनकर आ पहुँचे हैं।

रिंचन ने शत्रु-पंक्ति की पृष्ठ-दिशा से चार मील हटकर मोर्चा लगाया। रिंचन ने सदा की तरह आँधी बनकर हमला किया,

और दो मुहासरों पर कब्जा कर लिया। रिंचन के पहुँच जाने पर भला शत्रु कैसे टिक सकता था? वह भाग गया। और रिंचन ने इतनी बड़ी जिम्मेदारी को पूरा करके दिखा दिया कि वीरता और साहस के बल पर क्या कुछ किया जा सकता है?

अल्पायु रिंचन की असाधारण सैन्य-योग्यता, संगठन-शक्ति, अदम्य साहस और नेतृत्व हर किसी के लिए आदर्श है। रिंचन ने जिन विपरीत अवस्थाओं में सफल सैनिक कार्यवाहियाँ कीं, उनसे रिंचन की वीरता का सहज पता चला जाता है। इस वीरता-प्रदर्शन के उपलक्ष में श्वंग रिंचन (अब सूबेदार) को भारतीय गणतंत्र ने २४ जुलाई, १६५२ को "महावीर-चक्र" द्वारा सम्मानित किया।

सूबेदार श्वंग रिंचन लद्दाख की नुबरा घाटी के रहने वाले हैं। इन सैनिक-कार्यवाहियों के समय वह जम्मू काश्मीर-रक्षा-दल के एक साधारण सदस्य थे।

: ७ :

हवाई कॉमॉडोर मेहरसिंह

जम्मू-काश्मीर के युद्ध में केवल भारतीय भू-सेनाओं ने ही वीरता का प्रदर्शन नहीं किया बल्कि हवाई-सेना के अनेक उड़ाकों ने भी अपने जौहर दिखाए हैं। कहा जाता है कि इस लड़ाई की तैयारियाँ भारत-विभाजन के साथ-ही-साथ हो चुकी थीं, क्योंकि

इतने थोड़े वक्त में लगभग ५-६ सौ मील के सीमान्त पर एकाएक इतने सशस्त्र सैनिकों का फैल जाना और लूट-मार मचा देना आसान नहीं था। दूसरी ओर, इस आक्रमण का मुकाबला करने के लिए भारतीय सेनाएँ आक्रमण के बाद पहुँच सकी थीं।

जो भी हो, जम्मू-काश्मीर के इस युद्ध में हमारी थल और नभ की सेनाओं ने बलिदान, वीरता और साहस की बेजोड़ मिसाल पेश की है। हवाई कॉमॉडोर मेहरसिंह ही सब से पहले हवाई-सैनिक थे, जो टेढ़े-मोढ़े मार्गों वाले पुञ्छ नगर में सब से पहले पहुँचे थे। हिमालय के अखोजे मार्गों से होते हुए उन्होंने इस सीमांत पर कई हवाई-हमले किये। यदि मेहरसिंह ठीक वक्त पर न पहुँचते तो समूचे पुञ्छ नगर का सफाया हो जाता। उन्होंने पुञ्छ के लगभग ३० हजार से अधिक बे-घर-बार लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया था।

कुछ मास बाद वह लद्दाख की ओर बढ़े। प्रायः अधिक ऊँचाई पर उड़ने के लिए कुछ खास प्रबन्ध करने होते हैं। किन्तु ऐसे प्रबन्धों की उस समय भारतीय वीरों को सुविधा कहाँ थी। आक्रमणकारियों की हालत यह थी कि वह गिलगित-लद्दाख के इलाकों तक फैल चुके थे। उनकी मंशा थी कि मैदानी इलाके के साथ-ही-साथ पहाड़ी इलाके पर कब्जा कर समूची घाटी को हड़प लिया जाय। लेकिन यह मंशा भारतीय वीरों की गैरहाजरी में पूरी हो सकती थी। लेकिन जब वह मैदान में उतर चुके थे, तो हमलावरों की दाल गलनी सम्भव न थी।

लेह लद्दाख का सदर मुकाम है। यह १२ से १६ हज़ार फुट की ऊँचाई पर है। लेह के हवाई अड्डे दुनिया भर में समुद्र-तल से ऊँचे हैं। ऐसे समय में मेहरसिंह के पास जो भी साधन थे, उन्हींके बल पर वह लेह के हवाई अड्डे पर जा पहुँचे। इस स्थान से उन्होंने हवाई हमले का एक ऐसा ताँता बाँध दिया कि बे-रोक-टोक बढ़ते हुए शत्रु का, न केवल रास्ता ही रुक गया, बल्कि उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। इस कार्यवाही के समय मेहरसिंह ने तो मानो जिन्दगी को खेल ही समझ लिया था। यही नहीं कि उन्होंने केवल हवाई हमले ही किये, बल्कि अनेक ऐसे काम भी किये जिनके लिए उनकी जिम्मेदारी नहीं थी। उन्होंने अपने साथियों को यह दिखा दिया कि मनुष्य साहस के बल पर वह सब-कुछ कर दिखा सकता है, जिसे 'असम्भव' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, अगर ऊँची उड़ान के लिए खास प्रबन्धों की चिन्ता की जाती, तो दुश्मन कहीं-का-कहीं पहुँच जाता। इसी तरह पुञ्छ की मिसाल दी जा सकती है, जहाँ से उन्होंने ३० हज़ार बे-घर-बार लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया था।

कॉमॉडोर मेहरसिंह ने क्रानवैल से चालक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। और उसके बाद, अप्रैल, १९३५ में नं० १, इंडियन एयर फोर्स (भारतीय हवाई सेना) में अफसर नियुक्त हुए थे। आरंभ से ही मेहरसिंह उच्चाधिकारियों की नजरों में आ चुके थे। उनकी असाधारण योग्यता और कार्य-कुशलता के कारण सभी अफसर उन्हें चाहने लगे।

उन्होंने अविभाजित भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त में हवाई हमलों, और उनके बाद १६४३ में हठअनिया तथा बर्मा के इलाके में बिखरे स्त्री-बच्चों को एकत्र करने में जो हवाई-कार्यवाहियाँ की थीं, उनसे वह अपने अफ़सरों तथा साथियों के समान स्नेह-पात्र बन गए थे।

इसके अतिरिक्त, अराकान में मेहरसिंह ने जिस नेतृत्व और कर्तव्य-पालन में सफल हवाई कार्यवाहियाँ की थीं, उनके परिणाम स्वरूप उन्हें डी० एस० ओ० के मान से सम्मानित किया गया था। इंडियन एयर फोर्स में मेहरसिंह ही एक-मात्र ऐसे अफसर थे जिन्हें यह सम्मानित पद प्राप्त हुआ था।

इससे भी अधिक यह, कि विभाजन से पूर्व काल में मेहरसिंह और उनके सहायक चालकों के दल ने न रात देखी, न दिन देखा। वह थे, और उनके हवाई जहाज़ थे। मेहरसिंह की अध्यक्षता में इस दल ने पश्चिमी पंजाब के अरक्षित इलाकों से हज़ारों शरणार्थियों को निकाला, और भारत पहुँचाया। जिन लोगों तक वह पहुँच नहीं सकते थे, उन्हें अन्न और वस्त्र पहुँचाने के यत्न किये।

गत सितम्बर १६४८ में लगातार १४ वर्ष तक हवाई-सेना में संलग्नता पूर्वक कर्तव्य-पालन के बाद मेहरसिंह ने अपनी इच्छा से मुक्त (रिटायर) होने का आवेदन किया। उनकी सेवाओं और कर्तव्य-परायणता को दृष्टि में रखते हुए भारतीय गणतन्त्र ने उन्हें १ फरवरी १६५० को "महावीर-चक्र" द्वारा मान देते हुए अवकाश प्रदान कर दिया।

: ८ :

नायक नरसिंह

"कुमाऊँ का नातिनो चाहे ज्यान न्हैं जो पै आज दुश्मणाना के टुकड़-टुकड़ कर दियो, पिछाड़ि झन हटिया"—अर्थात् कुमाऊँ के बच्चो, जान चली जाय लेकिन दुश्मन के आज टुकड़े-टुकड़े कर डालो, पीछे नहीं हटना—यह हैं नायक नरसिंह के अन्तिम शब्द, जो उन्होंने शत्रु-बालू-भित्ती (Bunker) में घातक दशा में पड़े हुए कहे थे। नरसिंह के कुमाऊँनी में कहे उक्त शब्दों के गर्जन से चतुर्थ कुमाऊँ रेजिमैंट के जवानों में जोश की भीषण लहरें उमड़ आईं। "पिछाड़ि झन हटिया" (पीछे नहीं हटना) के आदेश ने कुमाऊँनी सैनिकों का रक्त खौला दिया। फिर भला शत्रु की क्या मजाल थी कि सामने ठहर सकता—और उसे भागना पड़ा, अपना सामान छोड़कर। नरसिंह ने अपने प्राणों की आहुति देकर शत्रु-स्थिति पर कब्जा कर लिया। भले ही नरसिंह इस दुनिया में नहीं, लेकिन उनका निःस्वार्थ आत्म-बलिदान, शत्रु को खदेड़ने का ध्रुव निश्चय, और वीरता की कहानी भारतीय सैनिकों के लिए चिरकाल तक आदर्श बने रहेंगे।

मई १९४८ की घटना है। काश्मीर में जेहलम नदी की उत्तर-दिशा में चाकोठी नामक स्थान पर शत्रु ने दो कंपनियों, एम०-एम०जी०एस० (M.M.G.S.) के एक भाग, ६ एल० एम० जी० (6 L.M.G.S.), हथगोलों तथा ३ इंच की बम-वर्षक तोप से

क़िले-बंदी कर रखी थी। चतुर्थ कुमाऊँ-रेजिमैंट को आदेश मिला कि चाकोठी से शत्रु को भगाकर उसे अधिकार में किया जाय। शत्रु की किलेबंदी पर हमला किया गया। दोनों ओर से भीषण संग्राम जारी था। भारतीय वीर-सैनिक हुक्म को पूरा करना जानता है। वह कर्तव्य पूर्ण किये बिना लौट नहीं सकता। गोलियों और बमों की वर्षा उसकी राह नहीं रोक सकती। वह पहाड़ से टक्कर ले सकता है। वह सिंह के जबड़ों में हाथ डाल सकता है। वह घायल होकर भी घावों की परवाह नहीं करता। गोली के घाव तो उसे जीवन-शक्ति प्रदान करते हैं।

और तभी, इस कार्यवाही में नरसिंह के एक गोली लगी। गोली क्या लगी, नरसिंह का रक्त खौल गया। वह घायल दशा में ही शत्रु की बालू-भित्ती में जा कूदा। मानो शत्रु का साक्षात् काल उसके पास जा पहुँचा। नरसिंह ने दो तोपचियों और गोली-वर्षकों को ठंडा कर दिया और ब्रेनगन छीन ली। ब्रेनगन हाथ में आई और उसने तूफान मचा दिया। शत्रु की किलेबंदी फूँस के झोंपड़े के समान धराशायी हो गई। जिस प्रकार पवन-पुत्र महाबली हनुमान ने महाबली रावण की लंका को भय-त्रस्त कर दिया था, नरसिंह ने शत्रु को चाकोठी से भागने पर लाचार कर दिया। नरसिंह शत्रुओं से घिरा हुआ अधिकाधिक घायल हो रहा था। किंतु वह धराशायी तब हुआ, जब एक भी जीवित शत्रु वहाँ नहीं था। उनके हाथ पड़ी हुई ब्रेनगन अब भी चलती-सी जान पड़ रही थी। अपने प्राणों की अंतिम आहुति से पूर्व

"......पिछाड़ि झन हटिया" के शब्दों से चतुर्थ कुमाऊँ-रेजिमैंट के हर सैनिक में नवीन जीवन जगमगा उठा और इन शब्दों के बल पर शत्रु को पीठ दिखानी पड़ी।

नायक नरसिंह का जन्म जिला अल्मोड़ा के कोटिला (पट्टी-मल्ला सुनार) नामक ग्राम में हुआ था। भारतीय गणतन्त्र ने नायक नरसिंह को अपूर्व आत्म-बलिदान के उपलक्ष में १७ फरवरी, १९५० को मरणोपरान्त "महा-वीर-चक्र" की उपाधि द्वारा विभूषित किया।

: ९ :

धोबी रामचन्द्र

साहस और वीरता तो मनुष्य-मात्र का आभूषण हो सकता है। जो भी चाहे, इस आभूषण को ग्रहण कर सकता है। शर्त केवल इतनी ही है कि इसे ग्रहण करने की हौंस होनी चाहिए, साहस होना चाहिए। यह आभूषण किसी जाति या वर्ग-विशेष की बपौती नहीं। वीर-पिता का पुत्र कायर भी हो सकता है और कायर पिता का पुत्र वीर भी हो सकता है। हर किसी में इस गुण का अंश तो होता है, लेकिन उसे प्रदर्शित करना अपनी-अपनी इच्छा और वातावरण पर निर्भर करता है। और यह भी सच है कि अवसर पड़ने पर जो अपने मानसिक संतुलन को स्थिर रखते हैं, वही साहसी और वीर बन सकते हैं।

२६ जनवरी, १६५१ की प्रातः का समय था। दिल्ली-छावनी में एक बड़ा भारी सैनिक-समारोह होने जा रहा था। खूब चहल-पहल थी। नियत समय पर भारतीय सेना के सेनापति, जनरल के० एम० करियप्पा पधारे। उपस्थित सेना ने उनका अभिवादन किया। उनके बाद लैफ्टीनैंट कर्नल पिंटो एक असैनिक व्यक्ति के साथ अभिवादन-रंगमंच की ओर बढ़े। यह असैनिक व्यक्ति बन्द गले का काला कोट पहने और सिर पर केसरी रंग की पगड़ी बाँधे था। लै० पिंटो ने असैनिक व्यक्ति को नियत स्थान पर पहुँचा दिया। इसके उपरांत, सैनिक-मुख्य-कार्यालयों के कर्नल वीरेन्द्रसिंह ने प्रस्तुत समारोह का उद्देश्य प्रकट करते हुए इस प्रकार वर्णन किया :

"१८ दिसम्बर, १६४७ को एक रक्षा-दल जम्मू जा रहा था। उस रक्षा-दल के आफीसर कमाण्डर लैफ्टीनैंट एफ. डी. डब्ल्यू. फालन थे। रक्षा-दल बढ़ा जा रहा था कि एकाएक भांबला में शत्रु के गुप्त आक्रमण का पता चल गया। शत्रु ने पुल पर का सारा सामान हटा लिया था और मार्ग रोकने की दृष्टि से गोलियाँ दाग रहा था। कमांडर आफीसर ने अपनी मोटर रोकी और एक असैनिक व्यक्ति की सहायता से पुल को पुनः पाट लिया। गोलियाँ अब भी लगातार चल रही थीं। मि० फालन उस असैनिक व्यक्ति की मदद से पुल को पाटने में लगे हुए थे।

अचानक एक गोली आफीसर कमांडर के लगी और वह घायल हो गए। मि० फालन के शरीर से लहू की धार बह निकली। उस असैनिक व्यक्ति ने ऐसी आपत्ति के समय कमाल का साहस

दिखाया। उसने मि० फालन की बन्दूक को अपने हाथों में ले लिया और लगा दागने गोलियाँ। वह उस समय तक गोलियाँ चलाता रहा जब तक मोटर पुल के पार न चली गई। उस असैनिक ने शत्रु के ६ जवानों को मौत के घाट उतारा।

अफसर के शरीर से लगातार लहू बह रहा था। उन्हें मोटर छोड़नी पड़ी, और नतीजा यह हुआ कि उस असैनिक समेत वह बाकियों से अलग हो गए। ढेरों खून बह जाने के कारण अफसर मृत-प्राय दशा में था। असैनिक उग्र खतरे के समय चाहता तो भाग खड़ा होता, लेकिन कर्तव्य की भावना ने उसे स्थिर रखा। लगभग आठ मील के फासले पर एक चौकी थी। असैनिक व्यक्ति ने उन्हें वहाँ तक पहुँचने में भारी मदद की। आफीसर ने बहुतेरा चाहा कि वह असैनिक व्यक्ति अपने-आपको इस खतरे में न डाले, किंतु वह नहीं माना। वह लगातार उनके साथ-ही-साथ रहा। रह-रहकर वह आगे जाता और देख आता कि रास्ता साफ है। निःसंदेह, इस व्यक्ति का साहस असाधारण था। गोलियों की बौछार में भी जिसने अपने होशो-हवाश को सही रखा, सच है वह किसी भी सधे हुए सैनिक से कम नहीं था।

और आप सब उपस्थित लोगों को यह जानकर महान् प्रसन्नता होगी कि वह असैनिक व्यक्ति यही हैं—रामचन्द्र (धोबी)।"

इस विवरण की समाप्ति पर उपस्थित सेना ने सम्मान-प्रदर्शन में अभिवादन किया, सैनिक वाद्य ने दिशाओं को गुँजा

दिया और इस साहस एवं धैर्य के उपलक्ष में भारतीय गणतंत्र की ओर से भारतीय-सेना के सेनापति जनरल करिअप्पा ने रामचन्द्र को "महावीर-चक्र" प्रदान किया। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र को ५०० रु० नक़द भेंट भी की गई।

समारोह की समाप्ति पर सैनिक और असैनिक दर्शकों - दोनों ने रामचन्द्र को बधाई दी और उपस्थित भीड़ ने रामचन्द्र को कंधों पर उठा-उठाकर हर्ष प्रकट किया।

विभाजन से पहले रामचन्द्र रावलपिंडी के रहने वाले थे। रावलपिंडी में रामचन्द्र का लाँड्री का कारोबार था। उसके बाद वह जालंधर में रहने लगे।

इस अवसर पर एक अन्य अधेड़ वय का पुरुष दूर खड़ा यह सब देख रहा था। उसकी आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलछला रहे थे। उसके शरीर में रह-रहकर रोमांच हो-हो जाता था। यह पुरुष थे रामचन्द्र के पिता, जिन्होंने भर्राए स्वर में केवल इतने ही शब्द कहे थे, "तूने मेरा नाम रोशन कर दिया—शाबाश !!"

: १० :

लेफ्टानेंट कर्नल हरबंससिंह विर्क

"झंगड़ का वीर"

दुश्मन का हौसला तो देखो। वह बढ़ता गया, और बढ़ता ही चला गया। उसे कुमुक-पर कुमुक पहुँच रही थी और नौशहरा की किलेबंदी को एकाएक खतरा हो गया। टिड्डी-दल की तरह बढ़ते हुए कबायली हरे-भरे खेतों को बियाबान कर रहे थे। घनी बस्तियों के इलाकों में आदमी दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता था। लेकिन नौशहरा की किलेबंदी टूटने के माने थे शत्रु की विजय। शत्रु की दुर्भावना की विजय, और सबसे बढ़कर अपना घोर पतन।

किंतु शत्रु ने जिसे सहज समझा था, वह इतना आसान न रहा। मराठा लाईट इन्फैंट्री की बटालियन उस टिड्डी-दल के मुकाबले खड़ी हो गई। जहाँ-तहाँ छुट-पुट हमलों से शत्रु की प्रतिरक्षा-पंक्तियों में दरार पड़ने लगी। मानपुर और भजनाओ के ग्रामों में दुश्मन ने मीलों-मील खंदकें खोद रखी थीं और हमारे वीर खुले मैदान लड़ रहे थे। बन्दूकों की सनसनाती गोलियों की बौछार दोनों ओर से जारी थी। बमों के गोले फट-फटकर कानों के पर्दे तक बींध रहे थे, और धरती काँप-काँप जाती। लेकिन कमाल है इस धरती के सीने को। बम गिरता, और फटकर, उछलकर धरती में ही सो जाता। दोनों ओर लाशों-पर-लाशें

बिछने लगीं। लेफ्टीनेंट कर्नल हरबंस विर्क को क्या सूझी ! एकाएक पीछे हटने का हुक्म जारी हुआ। इतनी जानों की तबाही हो चुकी थी, लेकिन दुश्मन को भी कम सजा नहीं मिली थी।

मराठा-बटालियन हट गई। किंतु नौशहरा की किलेबन्दी के लिए लगातार लड़ाई जारी रही। कभी यहाँ और कभी वहाँ। मराठा-बटालियन जो भी कदम पीछे हटाती, वह अंततः उतना ही आगे बढ़ा हुआ नजर आता। ये लड़ाई के दाँव-पेंच हैं कि हटो, पीछे हटो, और जितनी रफ्तार से पीछे हटे थे कि उससे दुगुनी रफ्तार से बढ़ो। यानी जब वीर सेनानी विजय की आशा में पीछे हटते हैं, तो उनका हर कदम उन्हें आगे बढ़ने के लिए चौकन्ना किये रहता है।

हरबंससिंह विर्क की इन शतरंजी चालों से मराठा-बटालियन के हर सैनिक के दिल में विजय के लिए पूर्ण विश्वास था। हर सैनिक मर-मिटना चाहता था विजय के लिए। उसके सामने एक ही लक्ष्य था, एक ही काम था, हर हुक्म को पूरी वफादारी के साथ पूरा करना।

और हरबंससिंह ने हुक्म दिया कि हंडन की पहाड़ी पर धावा बोल दिया जाय। हुक्म के साथ ही दो मिन्टों के अंदर-अंदर पचास से ज्यादा लाशों का ढेर हो गया। कुछ ही क्षणों में इतने सैनिकों की क्षति से सेना में बिजली-सी दौड़ गई। हर सैनिक की रगों का खून खौल उठा। इस क्षति में उन्हें विजय की साक्षात् प्रतिमा दिखाई दे गई।

नतीजा यह हुआ कि नौशहरा की किलेबन्दी ज्यों-की-त्यों सुदृढ़ बनी रही और शत्रु को उल्टे मुँह की खानी पड़ी। लेकिन उतने से ही बस तो नहीं हो सकती थी। अभी तो शत्रु केवल अस्त-व्यस्त ही हुआ था।

अब बाजी झंगड़ को फतह करने की थी। दुश्मन की जमी हुई प्रतिरक्षा-पंक्तियों को घेरते हुए मराठा इंफैंट्री पीर टिलनक्का पर पहुँची। इस नक्के पर विजय पा लेने से झंगड़ पर काबू हो जायगा। पूरी रफ्तार के साथ बढ़ते-बढ़ते एकाएक रुकना पड़ा। २४ घंटे लग गए। शत्रु ने २४ घंटे तक सिर-धड़ की बाजी लगाकर बढ़ने नहीं दिया। भीषण जंग हुआ। मराठा-बटालियन के दो अफसर और बहुत से सैनिक काम आ चुके थे। लेकिन हरबंससिंह अपने निश्चय पर अटल थे। उन्हें विश्वास था, विजय उनकी होगी। उन्होंने समय न खोकर सवेरा होने के साथ एक हमला और कर दिया।

शत्रु की तीन-इंची तोपें आग बरसा रही थीं। गोलियों की बौछार जारी थी और शतरंज की आखिरी चाल की तरह यह हमला निशाने पर बैठा। दुश्मन की रक्षा-पंक्ति टूट गई, और मराठा-बटालियन अपनी कामयाबी पर फूली नहीं समाती थी।

अंधेरा होते ही विर्क की सेना ने अपने-आपको संगठित कर लिया। और सुबह होने के साथ ही शत्रु का सफाया जारी हो गया। धावा करने, रक्षा-पंक्तियों को घेरने, और एकाएक अपनी स्थिति को संगठित करके शत्रु का सफाया करने में शत्रु को सँभलने

का मौका ही न मिला। और ऐसे समय में तनिक भी देरी हो जाने का परिणाम यह होता कि पुनः उतना ही जोर लगाना पड़ता। नेता की तत्परता और स्थिर बुद्धि का ही यह परिणाम था कि मराठा-बटालियन उसी दिन झंगड़ में पहुँच चुकी थी।

जनवरी १९४८ में लै० कर्नल हरबंससिंह विर्क ने मराठा लाईट इंफैंट्री की कमान सँभाली थी। उसी मास में उक्त सभी क्षेत्रों में उन्होंने अनेक बार शत्रु का सामना किया। और हर मुकाबले में विर्क की सेना का उत्साह निरंतर बढ़ता ही गया। वह सही मानों में नेता हैं। अनेक आफतों में भी जो नेता स्थिर-बुद्धि से कार्य सम्पन्न करता है, वही सच्चा सेनानी है।

नौशहरा की रक्षा और झंगड़ की विजय के उपलक्ष में लै० कर्नल हरबंससिंह विर्क को १९ अप्रैल, १९५० को "महावीर चक्र" की उपाधि द्वारा विभूषित किया गया। अपनी फौज में उन्हें "झंगड़ का वीर" कहकर याद किया जाता है।

अप्रैल १९४५ में, कर्नल हरबंससिंह बर्क ४/१२ फ्रण्टियर फोर्स रेजिमेंट के मेजर कम्पनी-कमांडर थे। उन्होंने उस काल में डी. एस. ओ. प्राप्त किया था। चौदहवीं सेना के रंगून पर हमला के समय जापानियों के साथ भी उन्होंने दृढ़ता एवं साहस पूर्वक युद्ध किया था।

विभिन्न पाँच युद्धों में वह पाँच बार घायल हो चुके हैं। एक बार उत्तर पश्चिमी सीमान्त में घायल हुए थे, दो बार बर्मा में, और दो बार काश्मीर-घाटी के युद्ध में।

: ११ :

लै० क० आर्काट गोविंदराज रंगराज

भारतीय चिकित्सा-दल के कार्य

युद्ध का मैदान कितना भयंकर होता है। स्वतः युद्ध कितना भीषण होता है। तोपें आग बरसाती हैं। आग ही नहीं, जहाँ तोप का गोला जा गिरता है, वहाँ आदमी तो क्या, धरती तक की दुर्गत हो जाती है। और बन्दूकों, ब्रेनगनों और मशीनगनों की गोलियों की बौछार सिपाहियों के शरीर छलनी बना देती है। सैनिकों के गोलियाँ लगती हैं, उसकी टाँग, बाँह की हड्डी टूट जाती हैं, किन्तु वह शत्रु से लोहा लेना चाहता है, वह बढ़ता है। फिर गोली लगती है, वह अशक्त होकर गिर पड़ता है। जब तक उसमें बढ़ने की ताकत रहती है, वह बढ़ता है। भले ही टाँग से खून वह रहा हो, भले ही उसका हाथ काम न करता हो, लेकिन जब तक उसका तन साथ देता है, वह गिरता नहीं। और जब गिरता है, तो बेबस होकर, या गिरता है कि फिर कभी न उठ सकने के लिए।

युद्ध के इस क्षेत्र में मनुष्य के सामने केवल एक लक्ष्य होता है—विजय ! विजय के लिए वह शत्रु को गाजर-मूली के समान काट डालता है। विजय के लिए वह आपत्ति को, आफत को जान-बूझकर मोल लेता है। उसे गोलों की चिंता नहीं होती, तोपों की मार उसे डगमगा नहीं सकती। आँखों के सामने वह

मृत्यु को साक्षात देखता है, पर वह व्याकुल नहीं होता। आकाश से बरसने वाले बमों का क्या पता, कहाँ तक सफाया कर जायँ। सामने की दिशा से बरसने वाली आग, आकाश से गिरने वाला मृत्यु का भीषण पंजा, दाएँ बाएँ—सभी दिशाओं में मृत्यु-मृत्यु—वीर सैनिक को अडिग, अचल बनाए रहता है। उसके स्थिर रहने में ही विजय है। भीषण संहार के उपरान्त ही सुखद विजय से भेंट होती है।

ऐसे विकराल और भीषण वातावरण में भी कुछ लोगों के हृदयों में असीम सहानुभूति होती है। ये कुछ लोग भी मृत्यु का आलिंगन करने में हिचकिचाते नहीं। किन्तु ये किसी का संहार नहीं करते, किसी पर गोली नहीं चलाते, किसी की जान लेकर विजय-देवि की उपासाना नहीं करते। ये कुछ लोग सहानुभूति, मानव-प्रेम, और मानवता के पुजारी होते हैं। महान् संकटों में भी इनकी इच्छा मनुष्य की रक्षा करने की रहती है, बरसती हुई अग्नि में ये लोग घायलों को, खून से लथ-पथ मानव को, मृत्यु का ग्रास होने वाले सैनिक को प्राण देने में, उसे कष्ट से मुक्त करने में ही अपना अहोभाग्य मानते हैं। युद्ध-क्षेत्र के अंतिम भाग में चिकित्सा-सहायकों का शिविर होता है। स्त्रियाँ और पुरुष अपने प्राणों की बाजी लगाकर घायलों की परिचर्या करते हैं। स्त्रियाँ माँ और बहन के दुलार से घायलों को जीवन-दान करती हैं। पुरुष भाईचारे के बन्धन में घायलों की सेवा करते हैं। सेवा का यह कार्य कितना महान् है, कितना महान् आदर्श है यह।

इस कर्तव्य-पालन में किसी सैनिक की अपेक्षा कम त्याग नहीं होता। इस कार्य में भी असाधारण आत्म-त्याग और बलिदान की भावना होती है।

गत दिनों कोरिया-युद्ध में लैफ्टीनैंट कर्नल आर्काट गोविंदराज रंगराज ने ६० वें भारतीय युद्ध-चिकित्सा दल सहित जो साहस-पूर्ण कार्य कर दिखाए हैं, उसकी विदेशियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। लै० क० रंगराज की अध्यक्षता में प्रस्तुत भारतीय चिकित्सा-दल न केवल मित्र-राष्ट्रों का ही स्नेहभाजन बना, प्रत्युत भारतीयों के सेवा-भाव और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से विरोधी तक मोहित हो गए।

० ० ०

सियोल के युद्ध-क्षेत्र में कितना भीषण संहार हुआ। भारतीय चिकित्सा-दल गोलों और गोलियों की वर्षा में घायलों की तत्परता के साथ परिचर्या कर रहा था। चिकित्सा-शिविर में घायलों का कराहना, भीषण रक्त-प्रवाह होना, किन्तु ये चिकित्सा-दल अपनी सुध-बुध खोकर घायलों और मृत-प्राय सैनिकों को जीवन-दान कर रहा था। एकाएक संयुक्त-राष्ट्र (U.N.) सेनाओं को सियोल नदी से उस पार जाने का आदेश हुआ। ऐसे अवसर पर चिकित्सा-दलों को अग्रणी दलों में रवाना किया जाता है।

विरोधी पक्ष की गोला-बारी जारी थी। लैफ्टीनैंट क० रंगनाथ अपने दल सहित कार्य-रत थे। कर्नल रंगनाथ को आदेश-पत्र पढ़कर सुनाया गया। स्वतः पढ़ने की उन्हें फुरसत भी कहाँ

थी ! कर्नल रंगनाथ ने आदेश पाया और कार्य-रत दशा में केवल इतना ही कहा, "नहीं, हम इन घायलों को इस दशा में छोड़कर नदी पार नहीं जायँगे, नहीं जा सकते।"

"डाक्टर ! अभी-अभी आपके दल के बहुत से व्यक्ति उस पार जा चुके हैं।"

"तो क्या ? मैं जो हूँ। जब तक इनकी परिचर्या न हो लेगी, मैं नहीं जाऊँगा।"

"विरोधी पक्ष का दबाव बढ़ रहा है। चिकित्सा-शिविर के सैनिक तो युद्ध-बंदी हो जायँगे। आप क्यों व्यर्थ ही युद्ध-बंदी बनना चाहते हैं ?"

महाशय, मैं अपना कर्तव्य पूरा किये विना नहीं हटूँगा। मुझे किसी भी आफत में पड़ना हो जाय, मैं इन्हींके साथ हूँ। हर एक को पट्टी हो जाने तक मैं यहाँ से नहीं हटूँगा।"

लैफ्टीनैंट कर्नल रंगनाथ की दृढ़ता को देखकर आदेश-वाहक सन्न रह गया। संयुक्त राष्ट्र-सेनाओं के सेनाध्यक्ष तक रंगनाथ की कर्तव्य-निष्ठा का सन्देश पहुँचा। सेनाध्यक्ष के मुँह से बरबस यह शब्द निकले, "भारतीय महान् हैं। कर्तव्य-पालन में विश्व-भर में उसका कोई सानी नहीं। अन्य सभी सदिच्छा-मंडल, जो चिकित्सा-उद्देश्य से इस समर-भूमि में आए हैं, उन सबमें भारतीय चिकित्सा-दल और उसका नेता लैफ्टीनैंट कर्नल रंगनाथ सर्वोच्च है।"

० ० ०

योगू के उत्तर में संग्राम हो रहा था। चारों ओर पहाड़-ही-पहाड़ हैं। आने-जाने की सुविधाएँ भी नहीं। एम्बुलेंस-गाड़ियाँ घायलों को ला नहीं सकतीं। गाड़ियों के लिए मार्ग ही नहीं। ले० क० रंगराज घायलों की परिचर्या पर नियुक्त हैं। कितनी कठिनाई से घायल आ पाते हैं। एक-एक स्ट्रेचर पर घायल को ढोना कितना कठिन है। लेकिन सेवा-भाव के सामने कठिनाई का क्या काम। चार घंटे तक रंगराज यहाँ जा, वहाँ जा, घायलों को निकालने, अन्य डॉक्टरों की सहायता करने में लगे रहे। उनकी संलग्नता को देख-देखकर साथी कार्यकर्ताओं को निरन्तर प्रेरणा प्राप्त होती रही।

२३ मार्च, १९५१ को लैफ्टीनैंट कर्नल रंगराज को अपने दल सहित अमरीकी हवाई सेना के साथ घायलों की चिकित्सा के लिए जाना हुआ। हवाई जहाज विरोधी-पक्ष द्वारा अधिकृत प्रदेश से निकल रहा था। इस प्रदेश में संयुक्त-राष्ट्र के सेनाओं के अनेक सैनिक चिकित्सा के बिना जहाँ-तहाँ घायल दशा में पड़े थे। अमरीकी हवाई-सेना और रंगराज चिकित्सा-दल को हवाई-छतरियों (पैराशूट) द्वारा इस प्रदेश में उतरने का आदेश हुआ। आँख झपकने की देर में हवाई-सेना-दल और भारतीय चिकित्सा-दल हवाई-छतरियों द्वारा आकाश से उतरने के लिए कूद गया। घायलों को हवाई-छतरियों में उतरते हुए सैनिक ऐसे लगे कि देवता उनके दुःख-मोचन के लिए स्वर्ग से उतर रहे हैं। पृथ्वी पर पाँव जमाते ही दल ने कार्य

आरम्भ कर दिया। रंगराज और उनका दल २३ मार्च की प्रातः ६ बजे से लेकर २४ मार्च की संध्या तक निरन्तर कार्य करता रहा।

कोरिया-युद्ध-क्षेत्र में इन असाधारण कार्यों के उपलक्ष में भारतीय गणतन्त्र ने लैफ्टीनैंट कर्नल आर्काट गोविंदराज रंगराज को २४ अगस्त १६५१ को "महावीर-चक्र" द्वारा पुरस्कृत किया।

गत द्वितीय विश्व-युद्ध के अवसर पर १६४१ में श्री रंगराज सेना-चिकित्सा-दल में अफसर नियुक्त हुए थे। ३५ वर्षीय रंगराज ने दक्षिण भारत के वैल्लोर नामक स्थान में जन्म लिया है। मद्रास-विश्वविद्यालय से उन्होंने डॉक्टरी पास की थी। सेना चिकित्सा-दल में भरती होकर उन्होंने हवाई-छतरी से उतरने में ट्रेनिंग हासिल की। श्री रंगराज ने अनेक सैनिक प्रशिक्षण पास किये और गत विश्व-युद्ध में चिकित्सा-विषयक उनके कार्यों की हर अफसर ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। जम्मू-काश्मीर के युद्ध में भी एक वर्ष से अधिक समय तक चिकित्सा-कार्य में संलग्न रहे।

इस सेवा-कार्य में वह ५० बार हवाई छतरी से उतर चुके हैं। गत युद्ध के समय बर्मा-युद्ध में वह हवाई-छतरी के चिकित्सा-दल के मुख्य अधिकारी थे, रंगून नगर के पतन से पूर्व ही १६४५ में वह एलीफैंट प्वाइंट पर उतरे थे।

अगस्त १६४२ में ६० वें भारतीय युद्ध-चिकित्सा-दल का सर्वप्रथम संगठन सिकन्दराबाद (दक्षिण) में हुआ था। इसके तीन साल बाद यह दल चकलाला (वर्तमान में पाकिस्तान में) चला गया। यहाँ इस दल ने हवाई-छतरी से उतरने का अभ्यास

किया। इसके उपरान्त इस दल को भारतीय हवाई-सेना के साथ जोड़ दिया गया, और मध्य-प्रदेश के बिलासपुर नामक स्थान पर रखा गया। यहाँ नव-युद्ध-प्रणाली में अभ्यास किया गया और कुछ मास बाद १९४६ में दल को करांची भेज दिया गया।

इसके बाद अक्तूबर १९४७ में इस दल ने कबायली-आक्रमण के समय काश्मीर में सेवा-कार्य किया। लगभग तेरह मास तक भिन्न क्षेत्रों में दल सहानुभूतिपूर्वक कार्य करता रहा। आस-पास के ग्रामों के लोग दल के कार्य से इतने प्रभावित हुए कि जब चिकित्सा-दल काश्मीर से चलने लगा तो लोगों को ऐसे लगा, जैसे कोई आत्मीय बिछुड़ रहा है।

फिर नवंबर १९५० के तृतीय सप्ताह में भारतीय सेना चिकित्सा दल कोरिया पहुँचा। भारतीय दल तो इस क्षेत्र का मानो "मसीहा" था। कितने प्यार से उसने मित्र और विरोधी— सबकी सेवा की। कोरिया के युद्ध की विलक्षणता यह है कि आज यहाँ और कल वहाँ। बहुधा दल को ऐसे स्थानों पर कार्य करना पड़ा कि जहाँ तोपों की मार निरन्तर रहती थी।

भारतीय दल की सहानुभूति सभीके लिए समान थी। स्ट्रैचरों पर आस्ट्रेलियावासी, चीनी और दक्षिणी कोरियावासी घायल आते थे, किन्तु भारतीय तो मानवता का संदेश लेकर गये थे। उनकी दृष्टि में भिन्न देशवासी केवल घायल-मात्र मानव था। हर किसी के साथ समान-व्यवहार किया गया। यदि विरोधी पक्ष के सैनिक की खतरनाक दशा थी, तो प्राथमिकता उसीको

दी गई। भारतीयों को सब देशवासी मित्रता की दृष्टि से देखते। चीनी और उत्तरी कोरिया के युद्ध-बंदी भारतीयों के स्नेहपूर्ण व्यवहार से आश्चर्य चकित रह गए।

भारतीय सेना-चिकित्सा-दल के कार्यों के प्रति संयुक्त राष्ट्र हाई कमांड, दक्षिणी कोरियावासियों तथा आंग्ल और अमरीकी नेताओं ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। अमरीकन सेना-अधिकारियों ने लिखित शब्दों में भारतीय सेना-चिकित्सा-दल के "सेवा-कार्यों को सर्वोच्च एवं अभूतपूर्व बताया है।"

जहाँ सेना में युद्ध करना अपूर्व वीरता का प्रदर्शन है, वहाँ घायलों की सेवा करने में भी वीरता और साहस का कम प्रदर्शन नहीं होता।

: १२ :

कप्तान किशनसिंह राठौर

६ फरवरी, १९४८।

नौशहरा के निकट एक चौकी।

दुश्मन ने हमले पर हमला किया। पर लैफ्टीनैंट राठौर का फौजी दस्ता टस-से-मस न हुआ। और दुश्मन ने एक बटालियन से भी ज्यादा ताकत झोंक दी। राठौर ने अपने दस्ते के आदमियों को गिना। महज ७० थे। शत्रु ने आक्रमण किया। सत्तर आदमियों के दस्ते ने जवाब दिया। शत्रु को लगा, भारतीय सैनिकों

की संख्या ७०० से कम न होगी। और ७० में से १० जवान बुरी तरह घायल हो गए। तो भी क्या? राठौर ने कहा—"जब तक एक भी जवान रह जाय, शत्रु के कदम आगे नहीं बढ़ने चाहिएँ।"

"कप्तान साहब, जब तक एक भी जवान जिंदा रहेगा, और उसके पास एक ही गोली होगी, तब तक शत्रु की मजाल नहीं, जो एक इंच भी आगे बढ़ सके।"

६० जवानों में जैसे ३०० हाथियों का बल आ गया। लैफ्टीनैंट राठौर उछलकर, फाँद-फाँदकर सबको गोला-बारूद पहुँचाने लगे। अकेला राठौर सिर पर ढो-ढोकर सामान देता। और अपने कप्तान के साहस को देखकर साठों जवानों ने कमाल कर दिखाया। उनके हाथों की फुर्ती देखिए। वह हथगोला गिरा, और उधर से मशीनगन की तड़-तड़ ने सैकड़ों गोलियाँ उगल दीं। शत्रु की बटालियन की लाशें बिछ गईं। बटालियन के बचे-खुचे हमलावर भाग रहे थे। कई सौ हमलावर घायल हुए और मारे गए। लैफ्टीनैंट राठौर के अपूर्व साहस के कारण महत्त्वपूर्ण स्थिति पर अधिकार बना रहा।

कुछ दिन बाद! लैफ्टीनैंट राठौर ने एक छोटे-से दस्ते के साथ दुश्मन पर हमला किया। हमला तो हो गया, लेकिन वह क्या? एकाएक शत्रु के बीच जा पड़े। पीछे हटते हैं, तो बेमौत मारे जायँगे। और आगे बढ़ने की गुञ्जाइश नहीं थी। राठौर को सूझी, और संगीनों से युद्ध शुरू हुआ। जो सामने आया, वह पल भर में तड़पता नज़र आया। स्वयं राठौर ने दसियों को बिछा

दिया। इस वार के सामने दुश्मन का हौसला पस्त हो गया, और वह भाग खड़ा हुआ। सच तो यह है कि वीरता कहते भी इसी-को हैं। जबरदस्ती मृत्यु और आफत को मोल लेने वाले ही शूरवीर होते हैं।

गत १ जुलाई १६५० को राजपूत-रेजिमैंट के लैफ्टीनैंट (अब कप्तान) किशनसिंह राठौर को वीरतापूर्ण कृत्यों के उपलक्ष में "महावीर-चक्र" का पुरस्कार प्रदान किया गया।

: १३ :

राइफलमैन धौंकलसिंह

बाएँ कंधे को आर-पार करती हुई गोली निकल गई। सैनिक रुका नहीं। उसके कदम डगमगाए नहीं। वह खोजी था। उसका काम दुश्मन का पता लगाना है। पल्टन पर गोलियों की बौछार से पहले उसकी छाती दुश्मन के वार सहने के लिए खुली रहती है। खोजी एक नहीं, दो नहीं, कतार में कई-कई चलते हैं। और उसके बाद खोजियों के संकेतों पर पल्टन बढ़ती है। सबसे आगे का खोजी अपनी जान हथेली पर रख लेता है। सारी पल्टन की जिम्मेदारी महज एक इंसान पर—सबसे आगे चलने वाले नं० १ खोजी पर होती है। कर्तव्य कितना महान् है।

धौंकलसिंह के बाएँ कंधे से गोली निकली और उसकी तेजी

शान्त हो गई। लेकिन कंधे के जख्मी होने से बनता ही क्या था। जो जान देकर जानों की रक्षा करने निकलते हैं, वह रुकते नहीं। उन्हें खून की धारा विचलित नहीं करती। वह खून देकर और भी उत्साहित हो जाता है। उनमें अनंत-अनंत शक्ति का सञ्चार हो जाता है। और धौंकलसिंह दुश्मन के घेरे की हद में जा पहुँचा। सारी पल्टन दुश्मन के घेरे से तीस ही गज पर तो थी।

धौंकल का कन्धा जख्मी तो हुआ। मानो सोते सिंह को जगा दिया हो। धौंकलसिंह झपटकर दुश्मन के आमने-सामने जा पहुँचा। 'छिपकर क्या गोली चलाते हो' और धौंकल ने हथगोले का वार किया। हथगोले ने अपना जौहर दिखाया और दुश्मन की तीन लाशें तड़पकर ठंडी हो गईं। शत्रु ने सोचा था, एक गोली से काम हो जायगा। और जब उसने देखा धौंकल के इस उत्कट साहस को, तो वह भागा। पल्टन बढ़ रही थी। रास्ता साफ हो रहा था। शत्रु भाग रहा था।

३० अप्रैल १९४८। उरी के दक्षिण की छोटी-सी पहाड़ी पर दुश्मन बेखबर पड़ा था। चीड़ के लंबे दरख्तों से अटी पहाड़ी की तंग राह से भारतीय सेना शत्रु का सफाया करने निकलेगी। धौंकलसिंह के हथगोले से कमाल दिखाया। शत्रु भागा तो, धौंकल ने पीछा किया। इस साहस की भी बलिहारी थी। जैसे शिकार ही खेल रहे हों। उधर दुश्मन ने भी वार किया। धौंकलसिंह पर हथगोला फेंका। धौंकलसिंह की छाती जख्मी हो गई। मुँह जख्मी हो गया। 'पर भागो, इतना भागो कि फिर लौट न

सको' और धौंकलसिंह इन शब्दों के साथ पीछा कर रहा था। धौंकल ने एक और हथगोला फेंका। दुश्मन के दो और सिपाही मौत के मुँह में चले गए।

अरे भाई, तुम्हारी वीरता की भी हद है! छाती से खून बह रहा है, मुँह किस तरह घायल है, कंधे की तुम्हें सुध नहीं। तुम वीर हो। तुम प्राण रहते शत्रु को सामने खड़ा नहीं देख सकते। तुमने प्रण किया है, शत्रु को मार भगाने का। तुम विजय के लिए जन्मे थे। तुम चिर-विजयी हो।

और धौंकलसिंह की मार खाकर शत्रु भाग गया। सारी पल्टन सुरक्षित थी। एक भी जवान घायल नहीं हुआ। एक ही ने शत्रु का सफाया कर दिया। धन्य हो तुम धौंकलसिंह!! पाँच दुश्मनों को चिर-निद्रा में सुलाकर धौंकलसिंह का घायल शरीर प्राणों को न सँभाल सका। छलनी हुए तन से धौंकलसिंह के प्राण विजय प्रदान करके अनंत में समा गए।

राजपूताना राईफल्स के राईफलमेन धौंकलसिंह की विलक्षण वीरता और आत्म-बलिदान के उपलक्ष में भारतीय गणतंत्र की ओर से २१ अप्रैल १९५० को उन्हें मरणोपरान्त "महावीर-चक्र" द्वारा पुरस्कृत किया गया।

धौंकलसिंह का जन्म राजस्थान के जिला जयपुर में सेकाला ग्राम में हुआ था। गत काश्मीर-युद्ध में धौंकलसिंह ने उक्त अपूर्व वीरता का प्रदर्शन करके अपनी जन्म-भूमि को अमर कर दिया।

: १४ :

ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान

"या खुदा, ये मोर्चा टूटे तो हमारी फौजें बढ़ें।"

"भारत के जवानों ने झंगड़ पर तो ऐसा कब्जा कर रखा है कि उसके मोर्चे को तोड़ना सहज नहीं जान पड़ता," शत्रु सेना के अफसर ने कहा।

"झंगड़ पर ही सारी बाजी है। और झंगड़ ही क्यों, नौशहर-झंगड़ से भारतीय फौजों को जब तक नहीं निकाला जायगा, तब तक हम हर्गिज कामयाब नहीं हो सकते। और देखो, भारत की फौजों ने अभी-अभी तो झंगड़ पर कब्जा किया है। अगर उसे घेर लिया जाय, और नौशहरा से और कुमुक न आने दी जाय, तो समझ लो, झंगड़ हमारा है। और फिर किसी की मजाल नहीं कि हमें यहाँ से खदेड़ सके।" एक दूसरे अफ़सर ने दृढ़तापूर्वक कहा।

और तब, शत्रु-सेना के अफसरों से तय किया कि भारत की फौजों को घेर लो। उन्हें नई मदद न पहुँच सके, इसका खास खयाल रखो। दिसम्बर १९४७ की २३-२४ की रात को शत्रु ने सारी ताकत के साथ झंगड़ को घेर लिया। लगभग दस हजार सैनिकों को दुश्मन ने एकाएक झोंक दिया। नौशहरा से आनेवाली मदद को रोकने के लिए तीन हजार फौजी नौशहरा-झंगड़ सड़क पर फैल गए। झंगड़ में घिरी हुई भारतीय सेना को अपनी

हालत का पता होते देर न लगी। मौसम की खराबी के कारण हवाई सेना भी उसे मदद नहीं पहुँचा सकती थी। इसलिए घिरे सैनिकों ने जी-जान की बाजी लगा दी। भारतीय सेना ने नौ-शहरा की दिशा में हटने का निश्चय किया। लेकिन पीछे हटना भी कोई सहज काम तो होता नहीं। क्योंकि पीछे हटते समय दुश्मन का जोर बढ़ा होता है, और उस वक्त अगर सही सामना न हो तो घिरी हुई सारी सेना का बच निकलना असंभव होता है।

इस घेरे की हालत में भी भारत की फौज ने दुश्मन का डट-कर मुकाबला किया। और आखिर, इस घिरी हुई सेना को अपनी इस कामयाबी पर बहुत खुशी थी कि वह अपने सोचे स्थान तक हट सकी थी। और अब भारतीय सेना ने नौशहरा के मोर्चे को मजबूत करना शुरू किया। जम्मू से लगभग ७० मील की दूरी पर नौशहरा है। निश्चय किया गया कि नौशहरा के मोर्चे को ऐसा मजबूत बनाया जाय कि दुश्मन अगर अपनी सारी सैनिक-शक्ति भी लगा दे, तो यह किला टूटना नहीं चाहिए।

नौशहरा-क्षेत्र ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान की कमान के अधीन था। ब्रिगेडियर उस्मान की फौज का हर सिपाही उस्मान के आदेश पर कुर्बान होने वाला था। और खुद उस्मान अपने सिर को हथेली पर रखकर मैदान में उतरे थे।

जनवरी २० की बात है। भारतीय सेना के सेनापति मे० जनरल के० एम० करियप्पा ने नौशहरा क्षेत्र का दौरा किया।

ब्रिगेडियर उस्मान की योग्यता एवं वीरता पर उन्हें पूरा भरोसा था। सेनापति ने आदेश किया कि नौशहरा से उत्तर-पूर्व की दिशा में पाँच मील कोट नाम के स्थान पर अधिकार किया जाय। कोट में शत्रु का अड्डा नौशहरा के मोर्चे के लिए हर वक्त खतरा बना रहेगा। कोट एक पहाड़ी जगह है, जो उस क्षेत्र में सबसे ऊँची है। नौशहरा और उसके आस-पास का पता रखने के लिए दुश्मन ने एक मजबूत चौकी वहाँ तैनात की थी। ५०० फौजी और तीन-इंची दो या तीन तोपों के साथ दुश्मन बेफिक्री के साथ जमा बैठा था।

सेनापति की आज्ञा हुई। ब्रिगेडियर उस्मान ने १ फरवरी को सूर्य निकलने के साथ ही कोट पर हमला बोल दिया। इसके साथ ही भारतीय हवाई सेना ने शत्रु पर बम गिराने शुरू कर दिए। एकाएक इस हमले के कारण दुश्मन का मोर्चा बात-की-बात में टूट गया। ऐसे अचानक हमले की उसे उम्मीद तक न थी। इस भगदड़ में भी उसने सामना किया। लगातार चार घंटे तक उसने मुकाबला किया। और आखिर उसे हटना पड़ा, भागना पड़ा। उसके डेढ़ सौ आदमी मारे गए और २०० घायल हुए। और इसके विपरीत हमारे ११ सैनिक मारे गए तथा १५ घायल हुए। कोट पर भारत की सेनाओं का अधिकार था लेकिन कोट छिन जाने की टीस से दुश्मन बौखला उठा। और उसने कोट का बदला लेने का निश्चय किया। कोट का बदला लेने के लिए उसने नौशहरा पर ही हमला कर दिया। कोट

की हार से व्याकुल होकर उसने एकाएक १५ हज़ार सैनिकों के साथ नौशहरा हथियार लेने की बाज़ी लगी। कहते हैं, इस काश्मीर-युद्ध में यह सबसे बड़ी लड़ाई थी।

६ फरवरी को झुटपुट अंधेरे में नौशहरा के दक्षिण-पूर्व से लगभग चार हज़ार और उत्तर-पूर्व से लगभग तीन हज़ार शत्रु-सैनिकों ने भारतीयों पर हमला कर दिया। और इसके साथ ही ५ हज़ार से अधिक दुश्मन की फौज ने ताईंधर और कोट पर भी हमला बोल दिया। लेकिन नौशहरा के मोर्चे की भारतीय फौजें बेखबर नहीं थीं। फौरन ही बम बरस ने वाले हवाई जहाज़ आकाश में दिखाई देने लगे। नौशहरा की ओर बढ़ती हुई शत्रु की सेना और सामान पर बम-वर्षा होने लगी। लगातार दो घंटे तक वह घमासान लड़ाई हुई कि दोनों ओर के लोग दंग रह गए।

दुश्मन की १५ हज़ार सेना में से दो हज़ार तो मौत के घाट उतारे गए और बेशुमार शत्रु सैनिक घायल हुए। इस बड़े भारी हमले में ताईंधर पर जो हमला हुआ था, वह खास जोरों का था। ताईंधर पर ५ हज़ र फौजियों ने हमला किया था। ब्रिगेडियर उस्मान अपनी सेना के साथ अभी इस जगह पर पहुँचे ही थे कि शत्रु ५० गज के भीतर आ गया। उस्मान ने मौका हाथ से न जाने दिया और आँख झपकने की देर में आमने-सामने संगीनों के साथ लड़ाई का आदेश दिया। उस्मान और उसके साथियों ने शत्रु को करारा जवाब दिया। भला भारतीय वीरों की संगीनों के

सामने वह टिक भी कैसे सकता था। शत्रु को लाचार पीठ दिखानी पड़ी। वह भाग खड़ा हुआ। ब्रिगेडियर उस्मान की फौज का हर सैनिक जी-जान से लड़ा। कहते हैं, एक भारतीय मशीनगन ने ६ हजार गोलियाँ छोड़ीं थीं और उन गोलियों के शिकार हुए थे, सुदान, पठान, स्वात और दीर के सैनिक तथा अनेक पाकिस्तानी।

इस प्रकार ब्रिगेडियर उस्मान पाकिस्तानी हमलावरों के लिए भयंकर काल समझे जाने लगे। जहाँ भी कहीं ब्रिगेडियर उस्मान से हमलावरों का मुकाबला होता तो उन्हें मुँह की खानी पड़ती। नौशहरा और झंगड़ के क्षेत्र में शत्रु ने सैकड़ों हमले किये और उसे सैकड़ों बार लौट-लौट जाना पड़ा। ब्रिगेडियर उस्मान पाकिस्तान और कबायलियों की आँखों में बुरी तरह खटकने लगे।

३-४ जुलाई की रात के गहरे अंधेरे में शत्रु ने झंगड़ पर गोला-बारी शुरू की। ऐसा लगता था कि आज शत्रु अपना सारा बदला ले लेना चाहता है। दुश्मन ने उस रात-भर में ६०० गोले झंगड़ पर बरसाये। और इधर ब्रिगेडियर उस्मान हर गोले का मुकाबला कर रहे थे। वह रात-भर अपने साथियों को होशियार करते रहे। हर सैनिक के पास जा-जाकर उसे खबरदार करते। बरसती हुई आग से सावधान करते। उस्मान के इस साहस को देख-देखकर हर कोई दाँतों तले अँगुली दबा लेता था। और उनके साथी अफसर ने उस्मान से कहा भी।

"उस्मान, सम्भलो। आग बरस रही है। सब सैनिक

मजबूती के साथ अपने अपने मोर्चे पर हैं। आप इस तरह खुले में हर जगह न जाइए।"

"नहीं भाई, हर सिपाही की जान की जिम्मेदारी मुझ पर है। हर सिपाही मेरा है, मेरी जान अगर उसे होशियार करने में चली भी जायगी, तो मुझे डर नहीं। मैं अपने सिपाहियों को बेखबर नहीं होने दूँगा।"

और तभी–तभी साथी अफसर चिल्लाया, "उस्मान! ब्रिगेडियर उस्मान! सँभलो, सँभलो, वह गोला आप ही की ओर···आप··· आप गोले का निशाना बन चुके हैं। और उस्मान एक खंदक से दूसरे की ओर बढ़ रहे थे। कि एक गोले ने उन्हें अपनी लपटों से झुलसा दिया। उस्मान अपना काम पूरा कर चुके थे। उस्मान अपना कर्तव्य-पालन कर चुके थे। उस्मान भारत की रक्षा के लिए प्राणों को दे चुके थे।

ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान की मृत्यु से शत्रु के खेमे में खुशियाँ मनाई जाने लगीं, और भारतीय सेना-शिविर में शोक छा गया। ऐसे वीर एवं साहसी की मृत्यु पर हर किसी की आँखें छलछला आईं। ब्रिगेडियर उस्मान के शव को हवाई जहाज द्वारा दिल्ली लाया गया। उनके शव का पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ जनाजा निकाला गया। इस जनाजे में भारत के गवर्नर जनरल, भारत के प्रधान-मंत्री तथा केन्द्रीय सरकार के अन्य मंत्री भी शामिल हुए थे।

ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान की अभूतपूर्व वीरता के उपलक्ष में

भारतीय गणतन्त्र ने २८ जनवरी, १९५० को उन्हें मरणोपरांत "महावीर-चक्र" की उपाधि से विभूषित किया। ब्रिगेडियर उस्मान भारत की भावी सन्तान के लिए कर्तव्य और वीरता की अपूर्व मिसाल छोड़ गए हैं। धन्य हैं, ऐसे भारत के लाल!!

: १५ :

नायक कृष्ण सोनावने

फरवरी १९४८।

नौशहरा की किलेबंदी भी कमाल की थी। दुश्मन ने सब यत्न कर लिये, पर उस किलेबन्दी को तोड़ने में असफल रहा। और तब एकाएक हारी हुई बाजी को जीत लेने के लिए उसने सिर-धड़ लगा देने का हौसला किया। नौशहरा की ओर आने वाले रास्तों पर हमारी छोटी-छोटी लेकिन जबरदस्त चौकियाँ थीं। एक-के आगे एक-चौकी के सिलसिले में हमारी सबसे आगे की एक चौकी के नेता नायक कृष्ण सोनावने थे। नायक कृष्ण बे-खबर तो नहीं थे, फिर भी उन्हें लगा कि दुश्मन ने उन्हें घेर लिया है। और इस ख्याल के साथ ही सब दिशाओं से उस चौकी पर हमला शुरू हो गया। नायक कृष्ण के सामने एक ही बात थी—दुश्मन बढ़ नहीं सकता, उसे बढ़ने नहीं दिया जायगा। इस छोटे से दस्ते की भले ही बोटी-बोटी उड़ जाय, पर दुश्मन

उन्हें पार नहीं कर सकेगा।

और इस ख्याल के साथ ही जैसे बिजली कौंध जाती है। हर जवान में जोश की लहरें उमड़ गईं। हर जवान जैसे १००-१०० के साथ लोहा लेने को तैयार हो उठा। युद्ध के नारों से सारा प्रदेश गूंजने लगा। और युद्ध-नारों के बीच कृष्ण के दस्ते की तोप से आग के गोले बरसने लगे। वह गोले कहाँ-कहाँ जा पड़ रहे थे, इसकी सुध किसे थी। वहाँ तो केवल एक ही उद्देश्य था—बरसाओ। इतनी आग बरसा दो कि दुश्मन की आँखें चौंधिया जाँय। चारों ओर इतनी आग बरपा कर दो कि दुश्मन का हर बढ़ने वाला कदम झुलस जाय। दुश्मन के चौतरफे हमले का सही जवाब और कुछ नहीं; बस यही कि वह तिल भर न बढ़े, वह रुके भी नहीं, और उसे भागना पड़े, वह भाग जाय। और कृष्ण की तोप के मुँह से उगलने वाली आग ने घायलों और मृतकों के ढेर लगा दिये। कहाँ एक चौकी का फौजी दस्ता और कहाँ सामना करने वाली बटालियन से भी ज्यादा फौज। उस बटालियन के चौतरफे हमले का जवाब देने के लिए जब केवल एक ही तोप हो, तो उस बिजली की रफ्तार का अन्दाजा करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। और बिजली की रफ्तार का ही ये नतीजा था कि दुश्मन के ७०० जवान ढेर हो चुके थे। पर वह तो मर मिटने की हौंस लेकर आया था। उसने इरादा किया था कि अगर बटालियन की बटालियन भी तबाह हो जायगी, तो भी नौशहरे का रास्ता साफ करना होगा।

इसलिए वह अपने जवानों को लगातार झोंक रहा था। लगातार उनकी कुर्बानियाँ दिये जा रहा था।

दुश्मन की इन सर-गर्मियों का नतीजा तो साफ़ था, लेकिन उसे दिल की हौंस पूरी करनी थी। और उसी समय, एकाएक न तोपची के गले को आर-पार करती हुई गोली निकल गई। वह बुरी तरह घायल हो गया, और जैसे ही नायक कृष्ण ने अपने तोपची की इस बुरी हालत को देखा, तो वह उस ओर बढ़ने लगे। उनका कदम उठा था कि दुश्मन का एक गोला उनके समीप ही फटा, और उसने नायक कृष्ण की दाहिनी बाँह को बुरी तरह जख्मी कर दिया। भला वीरों को ऐसे घावों की क्या चिन्ता! कृष्ण ने फौरन उस ओर से आँख हटाई और उससे बेखबर होकर बाएँ हाथ से ही गोलियाँ दागने का काम जारी रखा। इतना हो जाने पर भी दुश्मन वहीं-का-वहीं था। वह बढ़ा नहीं, बढ़ नहीं सका। भारतीय चौकी के जवान बेतहाशा आग बरसा रहे थे; और दुश्मन के लिए आगे बढ़ सकना नामुमकिन था।

अभी इतना नुकसान हुए कुछ ही क्षण बीते थे कि दुश्मन के एक गोले ने तोप को ठंडा कर दिया। तोप की चुप्पी से दुश्मन को लगा कि मैदान मार लिया। उसमें जोश की लहरें दिखाई दीं। वह बढ़ा, और बढ़ने लगा। उसकी आँखों के सामने जीत नाचने लगी। वह बढ़ता गया, उसका मार्ग साफ था। वह बढ़ रहा था, और एकदम करीब आ गया। कृष्ण की धारणा थी,

शत्रु हमारे जीते-जी उस चौकी को पार नहीं कर सकेगा। कमाल की हिम्मत थी। उन्होंने अपने दस्ते के जवानों में जोश पैदा करने के लिए युद्ध का नारा लगाया। सब दिशाओं से टकराकर युद्ध के नारे ने जैसे जवाब दिया—भारतीय सैनिक अजेय है ! भारतीय सैनिक विजयी है !!

नायक कृष्ण के दस्ते ने हथगोलों की मार शुरू की। हथगोलों की मार से दुश्मन के बढ़ते हुए पाँव जहाँ-के-तहाँ रुक गए। उसे महसूस हुआ कि इस चौकी से पार पाना मुमकिन नहीं है। उसका हौसला पस्त हो गया। जितना वह बढ़ सका था, उतना ही उसे पीछे हटना पड़ा। हथगोलों की मार ने उसकी जीत के हौसले को ठंडा कर दिया। वह लौटा, और उल्टे पाँव लौटता ही गया। हमारे दस्ते के जवानों की वीरता का सामना वह नहीं कर सकता था - न कर सका।

नायक कृष्ण सोनावने के निजी साहस, निश्चय और कर्तव्य के प्रति निष्ठा के कारण ही दुश्मन की इतनी बड़ी संख्या का सामना किया जा सका। कृष्ण सोनावने ने न केवल अपने साथियों के जोश को बनाए रखा बल्कि उन्होंने खुद भी वीरतापूर्वक युद्ध किया। यह दो घंटे की लड़ाई उनके साहस और धैर्य की कड़ी परीक्षा थी।

इस अपूर्व साहस के उपलक्ष में महार रेजिमेंट के नायक कृष्ण सोनावने को २२ फरवरी १९५० को 'महावीर-चक्र' के पदक से विभूषित किया गया।

: १६ :

मेजर एस. एम. एस. बरार

दूर-दूर तक ऊँची और नीची पहाड़ियों की कतारें, जो कहीं-कहीं आकाश को छूती हुई दिखाई पड़ती थीं। जैसे समुद्र की एक के बाद एक लहर उठ-उठकर दूसरी को अपने में समेट लेती है, ऐसे ही पुञ्छ की पहाड़ी कतारें जाड़े के बादलों में खो-खो जातीं, और उभर-उभर आतीं। कितनी लंबी कतारें थीं—आदमी की नज़र उनसे पार नहीं जा सकती थी। उनकी चक्करदार राहों में वह अटक-अटककर एक निश्चित सीमा तक ही जा पाती; और दुश्मन उन राहों से बढ़ रहा था। युद्ध की पहाड़ियों में फैली हुई बटालियन रास्ता रोके खड़ी थी। पहाड़ियों को तो वह फाँद जाता पर भारत के जवानों ने जो इस्पाती दीवार खड़ी कर दी थी, उसे पार कर जाना सहज नहीं था। फिर भी दुश्मन की फौजें लहरों की तरह बढ़ती आ रहा थीं। एक के बाद एक बढ़-चढ़कर, और जोरों से हमले-पर-हमला हो रहा था। लेकिन दुश्मन पुञ्छ में घुस न सके, हर भारतीय सैनिक के सामने यही सवाल था। अभी यहाँ, अभी वहाँ, गोलियों की बौछार, तोपों के गोलों की मार, हथगोलों की आग—सावन-भादों की बरसात की तरह बरस रही थी। और जवान थे कि उन्हें खबर होकर भी खबर नहीं थी। वह निडर इधर-से-उधर भाग रहे थे, हर कदम के साथ इस्पाती दीवार को मजबूत-ही-मजबूत बना रहे थे।

और तभी,

मेजर बरार ने फैसला किया। फैसला करने में मिनट भी नहीं लगा। पल ही भर में सब तय हो गया। उन्होंने अपनी रैजिमैंट का एक अग्रणी रक्षा-दल बनाया। वह रक्षा-दल का नेतृत्व करते हुए शत्रु-पंक्तियों की ओर बढ़ने लगे। उनकी कम्पनी का हर सिपाही बढ़ने लगा। उनके बढ़ते हुए कदमों को भला रोकने की किसे हिम्मत थी ? और दुश्मन ने हर कदम पर सामना किया। हर बढ़ने वाले कदम को रोकने के लिए शत्रु ने पूरा जोर लगाया। पर मेजर बरार अपने साथियों के साथ बढ़ते गए,—बढ़ते गए। दुश्मन की उमड़ती हुई फौजी लहरें धीमी पड़ गईं—उन लहरों में तूफान नहीं था, उन लहरों में जोश नहीं था, उनकी रफ्तार एकदम धीमी थी—एकदम धीमी।

× × ×

तभी मेजर बरार ने देखा, उनकी कम्पनी के केवल दो जवान बाकी रह गए हैं। वह दो मिलाकर तीन ही हैं। लेकिन दुश्मन की संख्या दो सौ थी। दो सौ के मुकाबले में तीन, और उन्हें घेरकर मौत के घाट उतारना कोई कठिन नहीं था ? दुश्मन ने तीनों पर चौतरफा हमला किया। जैसे सिर काटकर हथेली पर रख लिया हो, मेजर बरार ने ब्रेनगन चलानी शुरू की, और तड़ातड़ गोलियाँ बरसाने लगे। गोलियों की बौछार से दुश्मन के पाँव डोल गए। लेकिन जवाब में दुश्मन ने भी कमी न की। उसकी ताक-ताककर दागी हुई गोलियों से बरार घायल हो चुके थे।

पर वह थे, और उनकी ब्रेनगन थी। उनकी ब्रेनगन ने वह चमत्कार कर दिखाया कि दुश्मन के छक्के छूट गए। यही नहीं कि वह बढ़ने से रुक गया, बल्कि उसे उलटे पाँव लौटना था, और वह लौटा—वह पीछे हट गया।

× × ×

मेजर बरार के घावों से रक्त बह रहा था। फिर भी, अपने घावों की उन्हें चिन्ता नहीं थी। वह अपने घायल साथियों को हटवा रहे थे। वह उन्हें सुरक्षित जगह तक पहुँचाने में मदद कर रहे थे।

"मेजर साहब ! हम घायलों को हटाये बिना यहाँ से नहीं हटेंगे। आप ····"

"नहीं, नहीं ! ये नहीं, ऐसा नहीं होता।" मेजर ने जवाब दिया।

"आप बुरी तरह घायल हैं। आपकी रक्षा भी····"

"मेरे साथी पहले, और मैं बाद में," मेजर ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

और मेजर सावधानी के साथ उन्हें पहुँचवा रहे थे। दुश्मन पीछे तो हट गया, लेकिन रह-रहकर भागते हुए गोलियाँ चला रहा था। उसकी पस्त तोप के मुँह से निरुद्देश्य गोला जहाँ-तहाँ जा फटता था। तभी, एकाएक मेजर बरार के निकट ही एक गोला फटा। और सैनिकों ने सुना मेजर बरार के शब्दों को, "शाबाश ! मेरे बहादुरो ! तुमने इस छः घंटे में वह लड़ाई लड़ी

है, जिसे दुश्मन जिंदगी-भर याद रखेगा।" और इन शब्दों के साथ, विजित-युद्ध-भूमि में मेजर बरार चिरनिद्रा में सो गए।

मेजर बरार ने जिस महान् वीरता एवं असाधारण साहस, और आत्म-बलिदान का परिचय दिया है, वह अपूर्व है। उनकी यह मिसाल हमारे वर्तमान और भावी सैनिकों के लिए सदा आदर्श बनी रहेगी।

काश्मीर-घाटी के प्रस्तुत युद्ध के समय मेजर बरार कुमाऊँ-रेजिमैंट से संबंधित थे। फरवरी १९४८ की इस घटना के उपलक्ष में १८ जुलाई, १९५० को भारत-गणतन्त्र ने मेजर एस. एम. एस. बरार को मरणोपरांत 'महावीर-चक्र' द्वारा सम्मानित किया।

: १७ :

मेजर सत्यपाल चोपड़ा

पहाड़ी तो बहुत छोटी-सी है। और नाम भी कोई खास नहीं; उसे हर कोई जानता भी नहीं, लेकिन अब तो उस पहाड़ी का नाम इतिहास के पन्नों में अमर हो गया है। उसे हर कोई जानता है। भारत की भावी संतान उस पहाड़ी को जब-जब भी याद करेगी, तो उसका मस्तक सहसा श्रद्धा से झुक जायगा। पीर थिल निक्का की इस पहाड़ी के कण-कण में हमारे अनेक वीरों की कहानियाँ अनंत-अनंत काल तक जीवित रहेंगी। भार-

तीय वीरों ने अपने रक्त से इस पहाड़ी को अमर बना दिया है। यही वह पहाड़ी है, जिसने झंगड़-क्षेत्र के भयंकर युद्ध के समय भारतीय सेनानियों से बलि चाही थी, और भारतीय वीरों ने हँसते-हँसते अपना रक्त बहा दिया। पीर थिल निक्का पर शत्रु की बड़ी भारी क़िलेबन्दी थी। उसी के बल पर उसे विश्वास था कि भारतीय सेनाएँ उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकतीं—और झंगड़-क्षेत्र भारतीयों के लिए अजेय बना रह जायगा। लेकिन भारत के वीर सिपाहियों ने दुश्मन की इस धारणा की धज्जियाँ उड़ा दीं। उसे पीर थिल निक्का की छिन्न-भिन्न होती क़िलेबन्दी के साथ ही झंगड़ से भी हाथ धोना पड़ा, और बलिदान के बिना यह संभव भी नहीं था।

मेजर चोपड़ा झंगड़ की ओर बढ़ रहे थे। उनकी अग्रगामी कम्पनी बाएँ मार्ग से निकल रही थी। पीर थिल निक्का की पहाड़ी पर शत्रु ने किलेबन्दी कर रखी थी। चारों ओर बेशुमार खंदकें खुदी हुई थीं, और रेत के बोरों से खंदकें ढकी हुई थीं। मेजर चोपड़ा की कम्पनी को शत्रु ने देख लिया था, और देखते ही गोला-बारी शुरू कर दी। किन्तु आगे बढ़ते जाने का काम जारी था। उधर दुश्मन आग बरसा रहा था, और इधर निश्चयानुसार बाईं दिशा से निकलती हुई कम्पनी को दाईं दिशा वाली कम्पनी से मिल जाना था। आखिर दोनों कम्पनियों का मिलाप हो गया। और यह मिलाप भी ऐसी जगह हुआ, जो सर्वथा खुली थी, और दुश्मन की खंदकों से केवल दो सौ गज की दूरी पर

थी। दोनों कम्पनियों का मिलाप देखते ही दुश्मन ने वह धुआँ-धार मचा दी कि हद हो गई। बम वर्षा और गोलियों की बौछार से आग-ही-आग दिखाई दे रही थी। दोनों कम्पनियों को रक्षा के लिए भूमि पर लेट जाना पड़ा। गोलियाँ अब भी चल रही थीं, अब भी आग बरस रही थी; और सिपाही रेंगते हुए बढ़ रहे थे, बढ़ते जा रहे थे।

एकाएक मेजर चोपड़ा को सूझी। उन्होंने एक दस्ता साथ लिया, और रेंगते हुए बढ़ने लगे। उन्होंने बीच की एक जगह पर अधिकार कर लेना चाहा था। वह और उनका दस्ता बढ़ते रहे, बढ़ते जा रहे थे। रेंगते हुए, कदम-कदम, और उकडूँ होकर मेजर चोपड़ा अपने दस्ते के साथ उस जगह तक पहुँच जाना चाहते थे। तभी एकाएक मेजर चोपड़ा के चेहरे को दुश्मन की गोली ने जख्मी कर दिया लेकिन घायल होने पर भी वह रुके नहीं, थमे नहीं। उनका खयाल था, दुश्मन इसी दस्ते के साथ व्यस्त रहे, और बाकी सेना सुरक्षापूर्वक बढ़ती जाय। आखिर, यह उस स्थान पर पहुँच गए। मेजर चोपड़ा और उनके साथियों की सफलता से दुश्मन के पाँव जमे न रह सके। उसकी खंदकें खाली होने लगीं। और इस भगदड़ में मेजर चोपड़ा ने अपने साथी घायलों को समेटना शुरू किया। उन्होंने देखा कि उनके चार आदमी अब भी बाकी हैं। वह हर आदमी को बारी-बारी से खुद जा-जाकर लाये। और उधर दुश्मन की गोलियाँ अभी रुकी नहीं थीं। उनका चलना अब भी जारी थी। मेजर चोपड़ा तीन घायलों को ले

आए। किन्तु जब वह चौथे घायल को लेने जा रहे थे, तो दुश्मन का निशाना सीधा बैठ गया। वह गोली उनके सिर में लगी, और उन्होंने वीरता पूर्वक प्राणों की आहुति दे दी। मेजर सत्यपाल चोपड़ा ने अपने साथी सिपाहियों के लिए जान दे दी।

गत २४ जून, १६५० को उन्हें मरणोपरांत 'महावीर-चक्र' द्वारा सम्मानित किया गया। इस पदक द्वारा सम्मान देते हुए उनके विषय में इस प्रकार कहा गया है: "मेजर चोपड़ा ने अपने साथियों के प्राणों की रक्षा के लिए कर्तव्य-पालन करते हुए अपने अमूल्य जीवन का बलिदान किया। उनके नेतृत्व की शक्ति, उनका व्यक्तिगत रक्षा के लिए लापरवाह होना, उनकी कर्तव्य के प्रति निष्ठा और अपूर्व वीरता आदर्श हैं।"

इस सैनिक कार्यवाही के समय मेजर सत्यपाल चोपड़ा पाँचवीं मराठा लाईट इन्फैंट्री से संबद्ध थे।

: १८ :

मेजर नीरोद् बरुण बनर्जी

(कोरिया-युद्ध में वीरता-प्रदर्शन)

हमारा भारत कोरिया-युद्ध में शामिल नहीं था, लेकिन परम्परा के कारण कोई भी तटस्थ देश अपने फौजी चिकित्सा-दलों को घायलों की सेवा और चिकित्सा के लिए भेज सकता है।

इसीके अनुसार जब कोरिया में युद्ध शुरू हुआ, तो भारत ने पीड़ित मनुष्य-जाति के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट करने के लिए समय-समय पर चिकित्सा-दल भेजे। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि ये चिकित्सा-दल भी दूसरे सैनिकों की तरह ही अपनी जान को जोखिम में डालते हैं, दूसरे सैनिकों की भाँति अपनी कुर्बानी करते हैं, और इससे भी बढ़कर यह कहना चाहिए कि इनकी कुर्बानी दूसरे सैनिकों के मुकाबले कहीं ज्यादा होती है। क्योंकि एक सैनिक युद्ध में कर्तव्य-पालन के कारण दूसरे को मार डालता है, और उसका उद्देश्य दुश्मन को किसी भी हालत में हराकर जीतना होता है, किन्तु चिकित्सा-दल का सदस्य न तो जीतने की इच्छा से, और न ही हारने के खयाल से वहाँ जाता है। उसका उद्देश्य वैर-विरोध के बिना हर किसी की सेवा करना है। उसकी नज़र में मित्र और शत्रु का भेद नहीं होता, लेकिन इतने पर भी वह जान जोखिम में डाले रहता है। युद्ध होता है, गोलियाँ चलती हैं, बम बरसते हैं, आग बरसती है, पर चिकित्सा-दल के सदस्य घायलों को उठा-उठाकर अपने चिकित्सा-शिविर (खेमे) में लाते हैं, उनकी मरहम-पट्टी करते हैं, उनका इलाज करते हैं। गोलियों या बमों के वे भी शिकार हो सकते हैं, पर चिकित्सा-दलों के सदस्यों को इसकी चिन्ता नहीं होती।

ऐसे अवसर की एक घटना हम आपको बताते हैं, जिसमें भारत के चिकित्सा-दल ने अपनी परंपरा के अनुसार वीरता और

साहस का प्रदर्शन किया है।

'तोनाहाक' में हवाई जहाजों से युद्ध हो रहा था। हवाई बम-वर्षा से सभी ओर तहस-नहस हो रहा था। इस स्थान पर मेजर बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय चिकित्सा-दल के ६० सदस्य थे। हवाई बम-वर्षा से घायलों की चिकित्सा का सवाल पैदा हुआ। मेजर बनर्जी तक यह बात पहुँची तो उन्होंने पल-भर में ही निश्चय कर लिया। सारा दल लैस हो गया। हवाई जहाज तैयार हुआ और सारा दल आँख झपकते-झपकते में आकाश में उड़ चला। हवाई बम-वर्षा के दौरान में ही दल को चिकित्सा-कार्य के लिए उतरना था। और तभी, मेजर सहित साठों सदस्य विरोधी पंक्तियों के पीठ पीछे हवाई छतरियों से उतर रहे थे। ऐसे समय पर ऐसा साहस करना भी कुछ माने रखता है। एक ओर बम गिर रहे हों, और दूसरी ओर पीड़ित मनुष्य की सेवा के लिए उस बम-वर्षा में भूमि पर उतरना मामूली साहस का काम नहीं। सामने मौत नाच रही हो, और उसके मुँह में कूद जाना वीरों का ही काम है।

मेजर बनर्जी का दल भूमि पर उतरा और अपने कार्य में जुट गया। रात और दिन—चौबीसों घंटे, न आराम, न चैन, न नींद, खड़े-खड़े काम जारी रहा। किसी को थकावट महसूस नहीं होती, भूख नहीं लगती, हाँ, चाय की प्याली से थोड़ी-थोड़ी देर में एक नई-सी ताकत आ जाती है। और इसी तरह लगातार १२० घंटे तक चिकित्सा-कार्य जारी रहा। रह-रहकर समाचार

मिलता कि चिकित्सा-शिविर के पास ही बम-वर्षा जारी है, भयंकर खतरा पैदा हो गया है, इस स्थान से हटने में ही कल्याण है, किन्तु कर्त्तव्य के सामने सब बातें थोथी नज़र आती थीं।

मेजर बनर्जी कभी यहाँ, कभी वहाँ, कभी दूसरे डॉक्टर साथियों की मदद करते हैं, कभी घायलों को उठा-उठाकर लाने वालों की मदद करते हैं, कभी उन्हें यह, वह आदेश करते हैं। वह भीतर जाते हैं, बाहर जाते हैं। उन्हें एक ही खयाल है—कि घायलों की जानें बच जायँ। वह न रहें, उनके साथ भी चाहे नष्ट हो जायँ, पर घायलों के प्राण रह जायँ। जब तक उनके प्राणों में प्राण हैं, वह घायलों की सेवा करते रहेंगे—करते जायँगे।

और १२० घंटे के अथक परिश्रम के बाद मेजर बनर्जी और उनके दल ने देखा कि हर घायल की सेवा की जा चुकी है, मैदान में कोई कराह नहीं रहा, कोई घायल असहाय हालत में नहीं। अपनी इस सफलता पर उन्हें नाज़ हुआ। उन्हें अभिमान था कि उन सबने कर्तव्य-पालन किया है—उन्हें जो करना था, उन्होंने उसे पूरा किया है।

इस वीरतापूर्ण कार्य के लिए भारत-गणतंत्र ने मेजर नीरोद बरुण बनर्जी को 'महावीर-चक्र' का पदक प्रदान करके सम्मानित किया। कोरिया-युद्ध में चिकित्सा-दल का सफल नेतृत्व करने के उपलक्ष में २५-१-५२ को मेजर बनर्जी ने 'महावीर-चक्र'—भारत का द्वितीय वीर-पद धारण किया।

मेजर बनर्जी को पदक-प्रदान करने की घोषणा में कहा गया

है, "उनका व्यक्तिगत साहस, उनका अडिग निश्चय, और उनकी स्वार्थ रहित कर्तव्य-निष्ठा उनके साथियों के लिए उत्साह उत्पन्न करने वाली थी।"

: १६ :

हवलदार रामप्रसाद गुरंग

जोजिला (लद्दाख) की पहाड़ी खंदकों में कबायलियों का ताक-ताककर गोलियाँ चलाना, और दूसरी ओर जोजिला की प्रतिरक्षा-पंक्ति भंग करने के बाद भारतीय सिपाही खुले में था। शत्रु उस पर निरंतर गोलियाँ चलाता, और वह जमकर खंदकों में बैठा था। और इसी तरह, २ नवम्बर १६४८ को एक पल्टन हमलावरों को खदेड़ने की गरज से बढ़ रही थी। बद्गुम्बर नार के इलाके से कबायलियों को निकालने पर ही लद्दाख सुरक्षित हो सकता था। और आगे-ही-आगे बढ़ती हुई पल्टन पर गोलियाँ चलतीं, तो भारतीय सिपाही व्यर्थ ही हलाक होते। अभी बहुत दूर भी नहीं जा पाए थे कि लगा, दुश्मन ने किलेबन्दी कर रखी है। रेत के बोरों से खंदकें सुरक्षित करके शत्रु गोलियाँ दागने लगा।

बात बहुत बड़ी भी नहीं थी, लेकिन जान-बूझकर क्यों खतरा मोल लिया जाय। पल्टन दुश्मन की आँखों से तनिक ओझल हुई। पहाड़ी इलाके के भूमि-युद्ध में आमने-सामने होना

कठिन होता है। ऐसे वक्त पर चंद–एक या दो या तीन जवान ही वह काम कर जाते हैं, जो पूरी पल्टन नहीं कर पाती। और पल्टन के नेता ने कहा :

"पल्टन को और ज्यादा तबाही से बचाने के लिए केवल दो जानों की जरूरत है। केवल दो वीरों का आत्म-बलिदान विजय दिला सकता है, पल्टन की भी रक्षा कर सकता है।"

पल्टन के हर सिपाही ने नेता के शब्द सुने। सबकी आँखें चमक उठीं। हर किसी की आँखों के सामने मौत मुँह बाकर आई और चली गई। उसे हँसते-हँसते अपनी छाती से लगाने वाला नहीं मिल रहा था। और मौत, जिसके साथ विजय और रक्षा, साथ-ही-साथ चल रही थीं, निराश होने लगी। भला निराशा की क्या बात थी, आज ही तो माँ के दूध की लाज रखने का सवाल पैदा हुआ था। आज ही तो मातृभूमि की धूलि के कण-कण से सने शरीर की आहुति देने का समय हुआ था। और मौत निराश भाव से हर सिपाही की आँखों से हो-होकर बढ़ने लगी। और बढ़ने लगी, तो रुकी, और गुरंग ने जैसे लपककर उसे छाती से लगा लिया है, जैसे दोनों चिरकाल से बिछुड़े हों। हवलदार गुरंग ने शांत, स्थिर और उत्फुल्ल मुद्रा में नेता को उत्तर दिया :

"यह लीजिए, मेरा सिर हाजिर है। मैं उन खंदकों को बर्बाद करने के लिए अपने प्राण दे दूँगा। मैं जीते जी वहाँ से गोली नहीं चलने दूँगा।"

और पल्टन में जैसे बिजली दौड़ जाती है। हर सिपाही, हर जवान जान देने को तैयार हो गया। हर जवान की जबान पर यही शब्द थे : "मेरा सिर हाजिर है; मेरे प्राण हाजिर हैं।"

दूसरी ओर सारी पल्टन ने देखा; सारी पल्टन की आँखों ने देखा, हवलदार गुरंग हथगोलों और स्टेनगन से लैस शत्रु की खंदकों की ओर बढ़ रहा है। वह सामने खड़ी मौत का परवाना बन चुका था। और गुरंग के पीछे-पीछे एक राईफलमैन था। राईफलमैन उसका और गुरंग उसका रक्षक था।

गुरंग के हाथों में चमचमाती खुखरी थी। कहते हैं, खुखरी जिस गोर्खा के हाथ में है, वह अजेय होता है। वह सामना करने वालों को गाजर की तरह उड़ा देता है। और गुरंग ने तो कमाल ही कर दिखाया। किस फुर्ती और चुस्ती से वह खंदकों की आड़ में जा पहुँचा है। साँस लेने तक की आवाज नहीं आ रही। दुश्मन भी चुप, गुरंग चुप, राइफलमैन चुप!

और गुरंग रेत की दीवार की आड़ से हथगोले बरसाने लगा। गोलों के धमाके से खंदकों में हलचल हुई। कुछ भागे, दूर-दूर तक की खंदकें साफ होने लगीं। अब राईफलमैन भी चुप नहीं थी। हथगोलों और गुरंग की स्टेनगन ने आग बरसा दी। और म्यान में पड़ी खुखरी प्यासी रह गई; उसे लहू की प्यास थी, वह न मिला, न मिल सका। दुश्मन में लहू देने का साहस ही कहाँ था, उसमें लहू बहाने का हौसला ही नहीं था। और पल्टन ने शत्रु की जगह पर अधिकार कर लिया।

हवलदार गुरंग के लिए प्राणों की बाजी लगाना खेल हो गया। गुरंग ने यह चमत्कार एक ही बार कर दिखाया हो, सो नहीं। इससे भी ज्यादा खतरनाक चमत्कार तो उसने तब दिखाया था, जब वह एकदम अकेला केवल खुखरी के ही सहारे दुश्मन के कई आदमियों का सफाया कर गया था। बेचारे दुश्मन के आदमी सारा साजो-सामान छोड़कर और जान बचाकर भाग गए थे।

हवलदार रामप्रसाद गुरंग (५-वीं गोर्खा राईफल्स) को साहस तथा वीरतापूर्ण कृत्य के लिए २४ जून १९५० को 'महावीर-चक्र' के पदक द्वारा सम्मानित किया गया। गुरङ्ग का आत्म-त्याग उनके साथियों के लिए सदा आदर्श बना रहेगा।

: २० :

हवलदार लालबहादुर खत्री

"उस सामने की पहाड़ी के उस-पार दुश्मन की खंदकें हैं। आज ही रात-रात में उसे वहाँ से हटा देना है, खदेड़ना है; और रात है, कि अँधेरी।"

"अंधेरी रात है तो क्या? खुद दुश्मन की गोलियाँ छूटती हैं, तो अँदाज होता है कि दुश्मन पास ही है; बहुत दूर नहीं। इस टोली पर से तो वह एक दम एक सौ ही गज पर लगता है।"

टीले पर खड़े दो जवानों ने एक दूसरे से कहा। और बाकी पल्टन को पता हो जाय, वह घूमे, और टीले की दिशा में

गोलियों की बौछार होने लगी। शायद दुश्मन ने जान लिया था, शायद एक ही सौ गज से भी कम का फासला था, और उसने सुन लिया था, 'कि अंधेरा रात है तो क्या ?'

और साथी ने देखा कि उसका साथी जवान घायल हो गया है। वह लुढ़क गया, और पल्टन कमांडर घायल जवान की ओर बढ़े। गोलियों की बौछार जारी थी। गोलियाँ चमकती और अंधेरे को चीर कर जाने कहाँ जा गिरती; और अंधेरे की चादर जैसे फट कर फिर से जुड़ जाती। पल्टन कमांडर जवान को सहारा देकर उठा ही पाए थे कि एक गोली दाहिने कंधे को अनजाने पार कर गई। एक नहीं, दो घायल हो गए। पल्टन कमांडर को घायल पाकर निराशा बढ़ी; और अंधेरा और भी गहरा जान पड़ा।

लेकिन १७ मई १९४८ की रातों-रात दुश्मन को उस-पार से भगा देना है। वह खंदकें दुश्मन से खाली हों, और उन पर भारतीय जवानों का अधिकार हो—यही हुक्म है। घायल कमांडर ने हुक्म को दोहराते हुए कहा—'जब तक एक भी जवान है, वह लड़ता रहे—लड़ता रहे। दुश्मन को खदेड़ना है, उसे पुन्छ की पहाड़ियों से भगा देना है।"

जवानों ने सुना, और उस निराशा भरे अंधेरे की गहरी चादर की जैसे धज्जियां बन-बन कर उड़ने लगीं। गोलियों की धुआँधार से प्रकाश हो-हो जाने लगा। दुश्मन की खंदकें पास ही थीं। एक सौ गज से भी कम फासले पर दुश्मन खंदकों से

गोलियाँ बरसा रहा था। उसकी गोलियों का निशाना वही टीला था। लेकिन टीले की चोटी पर लगने वाली गोलियाँ किसी को हानि नहीं पहुँचा सकती थीं।

पल्टन-कमांडर अपने जवानों की बहादुरी देख रहे थे। रह-रह कर उनके दिल में आता—मैं घायल हूँ—नहीं, नहीं; घायल हूँ तो क्या ! मेरी पल्टन की कमान ! और तभी उन्होंने देखा, लालबहादुर खत्री ने पल्टन की कमान संभाल ली है। लालबहादुर साथी-जवानों को उत्साहित करने लगे। इधर-उधर, यहाँ-वहाँ—लालबहादुर के संकेतों पर जवान हथगोलों और बन्दूकों के वार कर रहे थे।

चन्द मिनटों में लालबहादुर ने देखा कि दुश्मन ने जवाबी हमला कर दिया है। गोला-बारूद की कमी तो खटक ही रही थी—और जब शत्रु ने जवाबी हमला किया, तो गोला-बारूद की कमी के कारण जवानों के दिल टूटने लगे। पल्टन के जवान धीरे-धीरे रेंगते हुए हटने लगे। भला खाली हाथों से मुकाबला कैसे किया जाता ! ऐसे खतरनाक मौके पर लालबहादुर खत्री ने वह काम कर दिखाया कि पल्टन के जवान दंग रह गए। जवानों ने देखा कि वह तो पीछे हट रहे हैं लेकिन लालबहादुर है कि अकेला ही मोर्चा लिये डटा है। लालबहादुर ने जवाबी हमले का जवाब इतना करारा दिया कि दुश्मन पग भर भी आगे न बढ़ सका। अब क्या था, जवानों में जोश का समुद्र लहरें मारने लगा। एकाएक सबने—हर किसी ने फिर से अपनी जगह संभाल

ली। जो कुछ भी, जिसके पास था, उसी के सहारे अपने दुश्मन को खदेड़ने का इरादा ठान लिया। और लालबहादुर सब से आगे, एकदम अकेला दुश्मन की हर गोली का जवाब दे रहा था।

एकाएक सूचना मिली कि गोला-बारूद बिल्कुल खत्म होने को है। लेकिन गोलाबारूद के खात्मे की सूचना से जहाँ चिंता के बादल घिर आ सकते हैं, वहाँ हुआ इससे विपरीत। लाल-बहादुर ने हुक्म दिया—सारे जवानों के हाथों में हथगोले हों, और दुश्मन के जवाबी हमले का जवाब इतनी फुर्ती से दिया जाय कि वह संभल न सके, वह सोच न सके। हुक्म होते ही हथगोलों की ऐसी वर्षा होने लगी कि दुश्मन का जवाबी हमला पस्त हो गया। हथगोलों की मार से उसके पाँव उखड़े ही थे कि पत्थरों की झड़ी लग गई। दुश्मन को सोचने का इतना भी मौका न मिला कि पत्थर हैं—और पत्थरों की मार से बचा जा सकता है। हथगोलों के बाद पत्थरों की मार से उसे लगा कि शायद ये अब भी बम गिर रहे हैं, और शायद अब फटे कि फटे। और वह भाग खड़ा हुआ। पुञ्छ की पेचीदी पहाड़ियों में वह दुबक-दुबक कर भागता गया।

लालबहादुर खत्री का एक साथी घायल हो गया था, किंतु लालबहादुर ने पत्थरों की बौछार के सहारे ही उसे दुश्मन के हाथों से बचा लिया। इतना ही नहीं, लालबहादुर का ऐसे खतरनाक मौके पर कमान संभालना, और गोलाबारूद की कमी होने पर भी दुश्मन

को महज पत्थरों के बल पर ही भगा देना कमाल की बहादुरी का काम था। इस असाधारण वीरता और साथियों को उत्साहित करने की तत्परता के फलस्वरूप भारत गणतन्त्र ने लालबहादुर खत्री को १५ अगस्त, १६५३ को 'महावीर-चक्र' का पदक प्रदान किया। लालबहादुर खत्री ३/८ गोरखा राइफल्स से संबन्धित हैं।

: २१ :

कर्नल राजेन्द्रसिंह

मार्च १६४० में युद्ध की सारी सरगरमी नौशहरा घाटी में ही केन्द्रित थी। दुश्मन ने सिर-धड़ की बाजी लगाकर झंगड़ पर अधिकार किया हुआ था, लेकिन झंगड़ क्षेत्र को दुश्मन के हाथों में ही छोड़ देना सहज नहीं था। इस क्षेत्र को फिर से जीतने में ही सारी जीत थी। इसलिए दुश्मन ने अपनी सारी ताकत इसी क्षेत्र में लगा दी थी। झंगड़ की ओर जाने वाला हर रास्ता दुश्मन की किलेबन्दी में शामिल था। पग-पग पर उसने सुरंगें बिछा दी थीं। सुरंगों का तो मुकाबला हो सकता था, लेकिन बरसात ने तो सारी घाटी में दल-दल पैदा कर दी थी। लगातार बारह दिन तक रात-दिन मेंह बरसता रहा। पानी-ही-पानी हो गया था। सब ओर के मार्गों पर पानी बिछ गया। टैंक नहीं बढ़ सकते, पैदल सेना नहीं बढ़ सकती। सारी सेना जहाँ-की-तहाँ रुकी है। उधर झंगड़ के क्षेत्र में दुश्मन है कि हर आने वाले दिन में

अपनी किलेबन्दी को मजबूत-से-मजबूत करता जा रहा है। बारह दिन की लगातार वर्षा के कारण झंगड़ जाने वाले मार्गों की सुरंगें छिप गई हैं। पानी से बह कर आती हुई मिट्टी की तहें उस पर चढ़ गई हैं, और उन्हें खोज निकालना आसान नहीं। टैंकों का दस्ता और सारी पैदल सेना रुकी है। दुश्मन की किले-बन्दी को तोड़ डालने की हौंस बरसात के पानी में बह-बह जा रही है, लेकिन भारतीय वीर के साहस का अंत नहीं।

आखिर, एक दिन हुआ। बादल फटे। जैसे भारतीय वीरों के लिए सारा मार्ग साफ हो गया। सूर्य चमका, और चमकता गया। उसकी गरमी से धरती खुश्क होने लगी। बारह दिन तक लगातार भीग-भीग कर जहाँ-के-तहाँ खड़े रहने वाले टैंकों में जैसे जान आ गई। टैंकों का दस्ता बढ़ने लगा। पीछे-पीछे पैदल सेना—सारा लश्कर बढ़ने लगा। बरसात से भीगी दिशाएँ युद्ध के नारों से गूंजने लगीं। हर टैंक, और हर सिपाही का निशाना झंगड़ था। लेकिन इतना भी साहस क्या? रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा नहीं। दो पहाड़ियों के बीचों-बीच के मार्ग पर सशस्त्र सेना बढ़ रही थी। और दुश्मन की नजरें उस पर थीं। वह साँस रोके रास्ते के ऊपर खड़ा था। उसे खयाल था, नाहक गोला-बारी क्यों की जाय? आखिर सुरंगें भी तो अपना कमाल दिखाएँगी ही। लेकिन भारतीय वीर को बढ़ना था, आगे-ही-आगे जाना था। उसका निशाना झंगड़ था। भले ही सारी राह पर आग बिछी हो।

लेफ्टीनैंट कर्नल (अब कर्नल) राजेन्द्रसिंह नं० सात लाईट कैवेलरी के नेता थे। उन्होंने महसूस किया, जान पर खेलने में ही हमारी जीत का राज छिपा है। उन्होंने टैंक-दस्ते को हुक्म दिया। टैंक बढ़ने लगे, उनके टैंकों की गति को कौन रोक सकता था? लेकिन धरती में छिपी सुरंगों ने आगे वाले टैंक को उड़ा दिया। टैंक के कारण रास्ता रुका। दुश्मन, जो रास्ते के दोनों ओर साँस रोके चुपचाप बैठा था, संभला, और उसने गोलियाँ बरसाना शुरू कर दिया। न आगे जा सकते हैं, न पीछे हट सकते हैं, और पीछे हटना तो भारतीय वीर ने सीखा ही नहीं।

रास्ता रुक गया है, रुका रहे, लेकिन ऊपर खड़े दुश्मन को गोलियों का करारा जवाब मिला। बारह दिन की बरसात में ठंडी पड़ी मशीनगनों की मार का यह मुकाबला न कर सका। उसे हटना पड़ा। और इसी हटने में लै० क० राजेन्द्रसिंह ने अपना रास्ता साफ कर लिया। टैंक को हटाकर बाकी टैंक बढ़ने लगे। पैदल सेना और सारा लश्कर बढ़ने लगा। भारतीय सिपाही का निशाना झंगड़ था। उसे झंगड़ की किलेबन्दी को तहस-नहस करना था। टैंक बढ़ रहे थे—किलेबन्दी टूट रही थी, और दुश्मन के जवान रास्ते से दूर-दूर हटते जा रहे थे।

लै० क० राजेन्द्रसिंह अपने दस्तों के साथ झंगड़ के मुहासरे पर जा पहुँचे। अन्य मार्गों से आने वाली भारतीय फौजों के साथ उनका मेल हो गया। अब तो झंगड़ सभी दिशाओं से घिरा था। दुश्मन ने जी-जान से मुकाबला किया, लेकिन उसे झंगड़

से भागना पड़ा ।

इस प्रकार झंगड़-क्षेत्र की जीत में कर्नल राजेन्द्रसिंह ने अपने दस्तों को कामयाब बनाया। रास्ते की विकट परिस्थितियों में कर्तव्य और साहस के बल पर कर्नल राजेन्द्रसिंह ने अपने साथियों को स्थिर रखा। भयङ्कर गोलियों की बौछार में भी उन्होंने कर्तव्य-परायणता का सबूत दिया और निशाने पर जा पहुँचे।

उनकी वीरता और साहस के बदले भारत गणतन्त्र ने १५ अगस्त १९५२ को उन्हें 'महावीर-चक्र' का पदक प्रदान किया। कर्नल राजेन्द्रसिंह की वीरता भारतीय सिपाहियों के लिए आदर्श बनी रहेगी।

: २२ :

ब्रिगेडियर ए० ऐस० पठानिया

एकाएक भगदड़-सी मच गई। हर सिपाही लैस होकर डट गया। कैंप-रक्षक पहरेदारों ने घेरा डाल लिया। कोई भी अपने स्थान से हिले नहीं, डुले नहीं। हर सिपाही अपनी बन्दूक के घोड़े पर अंगुली रखे हुकम के इंतज़ार में साँस रोके खड़ा था। कोई बोलता नहीं, किसी की आवाज़ नहीं—और रक्षक-दल के घेरे में चुपचाप एक कबायली कदम-कदम चल रहा है। १।५ गोरखा रायफल के जवानों की नज़रें रक्षक-दल के घेरे पर लगी हैं। अभी हुक्म होगा, अभी, पल भर ही में दुश्मन के भेदिए के

धीमे कदम बिलकुल—हमेशा के लिए रुक जायँगे। गोरखा रायफल के हर जवान की छाती उभर-उभर गई है, आँखों में जोश उतर आया है। दुश्मन का भेदिया है। उसके शरीर का ज़र्रा-ज़र्रा उड़ जायगा। अंधेरे में गोलियों की आग में भेदिए का सब कुछ नष्ट हो जायगा। दुश्मन के साथी उसकी लम्बी इंतज़ार में निराश हो जायँगे।

"टु आर्म्स !"

सारी सेना—हर सिपाही तरतीब में खड़ा होगया। रक्षक-दल के जवानों ने "टु आर्म्स" का आदेश सुना तो दंग रह गए। उन्हें लगा, ब्रिगेडियर का हुक्म है। ब्रिगेडियर पठानिया की आवाज़ है—बिल्कुल वही लहजा, वैसा ही सिंह-नाद ! नहीं-नहीं, भेदिए ने खूब रूप बनाया है। शायद पठानिया की हू-ब-हू आवाज़ की नकल करली है। कमाल कर दिया दुश्मन ने। तभी……

रक्षक-दल ने देखा। भेदिए की पोशाक गिरी। कबायलियों का वेश धरती पर पड़ा था। ब्रिगेडियर रक्षक-दल से …नहीं-नहीं। रक्षक-दल का हर सिपाही अपने स्थान पर तैनात था। सारा कैंप दंग रह गया। कोई बोला नहीं, किसी की आवाज़ नहीं। केवल जूतों की चर्र-मर्र, बन्दूकों के कुन्दों को उतारने की धीमी-धीमी कट्-कट् के साथ सारा कैंप अंधेरे की दुनिया में खो गया।

× × ×

"आज ही, अभी रातों-रात अनन्त घाटी में फैले दुश्मन को खदेड़ना है; सारी अनन्त-घाटी को दुश्मनों से साफ़ कर डालना है। घाटी के चप्पे-चप्पे पर दुश्मन मज़बूती के साथ खंदकों में पड़ा है। हर खन्दक साफ हो जाय, आगे बढ़ने पर पीछे से हमला होना कितना ख़तरनाक है! ध्यान रहे, दुश्मन के एक भी जवान की पीठ पीछे चली गोली हमारा सारा काम बिगाड़ देगी। हमें आगे बढ़ना है—अनन्त-घाटी में इस १४–१५ नवम्बर १९४८ की रात में एक भी ज़िंदा दुश्मन न रहे—एक भी नहीं।"

× × ×

लै० क० पठानिया ऐसे बढ़ रहे थे, कि उन्हें हर बढ़ने वाले कदम का पहले से ही पता था। उनका हर आदेश ऐसा था, कि वार खाली नहीं जा सकता था। अनन्त-घाटी की इंच-इंच धरती से जैसे उन्हें बहुत पुरानी पहचान थी। गोरखा जवान आदेश पाते कि बात-की-बात में खंदकें साफ हो जातीं। जवानों को लगा कि ब्रिगेडियर जैसे दुश्मन के हर अड्डे को जान चुके थे; और वह जानते थे। उन्होंने दुश्मन की हर खंदक का पता कर लिया था। उन्हें पता था, उस पहाड़ी पर दुश्मन की कितनी ताक़त है, उन्हें पता था, दुश्मन पर किस दिशा से एकाएक हमला हो जाने पर वह भाग खड़ा होगा। और उनके आदेश थे कि खाली नहीं जा सकते थे।

एक-एक कर दुश्मन को अपने ५-६ मज़बूत अड्डों से भागना पड़ा। बढ़ने का रास्ता साफ था। अब अनन्त-घाटी में फैले

दुश्मन को घेर लेना सहज था। वह भागेगा, भाग सकता है, किन्तु खाली नहीं जा सकता। उसे भागने की कीमत देनी होगी। ज़ोजिला दर्रा की पहाड़ियों पर वह जम कर नहीं बैठ सकता।

इसके बाद शत्रु को घेरे में लेने का हुक्म हुआ। बिजली की तरह, लेकिन चुपचाप दूर-दूर तक भारतीय जवान फैल गए। रातों-रात इस घाटी को दुश्मन से खाली कर देना है, मीलों-मील दुश्मन का आदमी दिखाई न पड़े।

अभी सबेरा नहीं हुआ था, किन्तु सबेरा होने को था। उस धुन्धलके में संकेत हुआ। संकेत पाते ही घेरा डाले भारतीय जवानों की गोलाबारी से दिशाएँ गूँजने लगीं। दुश्मन इस हमले का जवाब नहीं दे सकता। उसे और कोई चारा नहीं, उसे भागना ही होगा। घेरे के जवान और उनकी गोलाबारी की आवाज़ हर कदम के साथ आगे बढ़ रही थी। दुश्मन खंदकों से निकल-निकल कर दौड़ रहा था।

ब्रिगेडियर पठानिया के युद्ध-कौशल ने कमाल कर दिखाया। उनके नेतृत्व में लड़ने वाले जवानों का उत्साह कितने गुना बढ़ गया। पठानिया ने दुश्मन का भेद लेने के लिए कितना बड़ा जोखिम उठाया, लेकिन युद्ध के मैदान में जोखिम उठाना ही तो वीरता है। वीर ही जोखिम उठा सकता है। जोखिम उठाने में ही विजय का भेद छिपा रहता है। अगर ब्रिगेडियर खुद अपनी जान को हथेली पर रख कर भेद न लाते, तो न जाने कितने जवान नाहक मारे जाते।

ले० क० (अब ब्रिगेडियर) ए० ऐस० पठानिया के प्रस्तुत युद्ध-कौशल और महान् आत्म-त्याग के बल पर ही जोजिला-युद्ध के इस क्षेत्र में विजय प्राप्त हुई। उनके त्याग एवं वीरता के उपलक्ष में भारत गणतंत्र के राष्ट्रपति ने १५ अगस्त, १९५३ के स्वतंत्रता दिवस पर ब्रिगेडियर पठानिया को 'महावीर-चक्र' का पदक प्रदान किया।

: २३ :

लैफ्टीनैंट कर्नल पृथ्वीचन्द्

निहत्थे पहाड़ी देहातियों पर गोलियाँ चलीं, तो वे डर गए। ऊँची-नीची पहाड़ियों पर बसे देहातों में कुहराम मच गया। घर तो नाम को ही थे, फिर गोलियाँ चलीं, तो बेचारे अपना सब-कुछ छोड़ कर पहाड़ों में इधर-उधर भागे। जहाँ,और जिधर भी भागते, कहीं-न-कहीं से गोली दागने की आवाज़ आ जाती। न खाना, न पीना—बच्चे-बूढ़े, जवान, स्त्री-मर्द हर कोई परेशान। सोचते इस बर्फीले देश पर ये गोलाबारी क्यों ? आखिर, जिन पहाड़ियों ने, दोस्त या दुश्मन किसी की शक्ल तक नहीं देखी, उन पर ये गोलाबारी, गोलियाँ दागना—यह सब क्यों ? बे-बात के दुश्मन कौन, और कैसे ?

पर उन्हें क्या मालूम था कि हुकूमत के नशे में कोई उन्हें जीतने आया है; कोई उनके प्रदेश पर अधिकार करना चाहता है,

कोई चाहता था कि ये सब निहत्थे और गरीब देहाती उसके मुल्क के अधीन हो जायँ, उसकी रियाया—प्रजा होकर रहें।

और उस दिन शाम के झुटपुटे में कई-कई देहातों के बड़े-बूढ़े दूर नीचे खड्ड की एक समतल ज़मीन पर बैठे। सबने सोचा, यह आफ़त क्या है, सरकार के लोग कहाँ हैं? हम हैं कि रात-दिन बेघर हो-हो कर पहाड़ों में मारे-मारे फिरते हैं।

"भाई, सुना है, पाकिस्तान ने कबायली लुटेरों को जम्मू, काश्मीर, लद्दाख, गिलगित में उत्पात और लूट-मार और इस सारे मुल्क पर कब्जा करने के लिए भेजा है। पीछे-पीछे उसकी फौजें हैं, और कबायली मीलों-मील आगे बढ़ते हैं। जम्मू और काश्मीर में भारत की फौजें उनका मुकाबला कर रही हैं, और मौका पाकर लोग इस पहाड़ी इलाके में फैल गए हैं। लेकिन भारत के जवान इस इलाके से भी उनका सफाया कर देंगे, और लेह में सैकड़ों जवानों की पल्टनें तैयार हो गई हैं", एक ने कहा।

"लेकिन······"

"लेकिन वाली कोई बात नहीं। चंद ही दिनों की बात है। घबराने से काम नहीं चलेगा।······"

× × × ×

हर देहात में, और देहाती आबादियों में चर्चा थी। भारत और जम्मू-काश्मीर रियासत के जवान बढ़े आ रहे हैं। दुश्मन का सफाया हो रहा है। देहाती अपने घरों को लौट रहे हैं। उनकी रक्षा करने वाले आ गए हैं। उनके जानो-माल की रक्षा की जा

रही है, उनकी इज्ज़त-आबरू पर हमला करने वालों को मौत का मुँह देखना पड़ता है।

११ हज़ार फुट की ऊँचाई पर मेजर पृथ्वीचंद के नेतृत्व में १८ जवान ज़ोजिला दर्रे को पार कर चुके थे। फरवरी (१९४८) का महीना। चारों ओर बर्फ ही बर्फ। बर्फीली ठंडक से बचने का सामान नहीं था। बूटों में पाँव जम-जम जाते, हाथ अकड़-अकड़ जाते, मुँह पर ठंडी हवा के थपेड़े पड़ते, लेकिन जवान थे कि बढ़ते जा रहे थे। लुटेरे कबायलियों को भगा देना था, और लद्दाख घाटी के निहत्थे और मेहनती लोगों की इज्ज़त और आबरू की रक्षा करनी थी।

मेजर पृथ्वीचंद का दल बर्फीली हवाओं से घायल लेह पहुँचा। लेह में दो सौ जवानों की पल्टन तय्यार मिली। कई गुना हौसला बढ़ गया। मेजर पृथ्वीचन्द ने समूचे दल को छापामार लड़ाई (गुरीला वार-फेयर) के लिए तैयार किया। उन्होंने बतलाया कि लद्दाखघाटी की पेचीदिगियों में दुश्मन के आदमी जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं। जम कर लड़ाई संभव नहीं। इसलिए छापामार लड़ाई के ढंग से सब को काम करना है। दुश्मन को खोज-खोजकर इलाके से निकाल देना है। दुश्मन सिंधु और नुरवा नदियों की घाटियों से बढ़ रहा है। उसे रोकना है, और रोकना ही नहीं, उसे लौटा देना है, खदेड़ देना है।

× × × ×

२१८ जवान बर्फीली पहाड़ियों और राहों पर पड़े थे। रसद

नहीं, सामान नहीं, लेकिन कर्तव्य सामने था। आपत-काल के लिए रखे सत्तू खा-खा कर जवान छापामार लड़ाई कर रहे थे। सारा दल सौ मील के घेरे में दुश्मनों को पस्त कर रहा था। बढ़ने वाला शत्रु आगे न बढ़ा, और पहाड़ी चौकियों में अड्डा जमाकर बैठे, चौकियों को खाली कर रहे थे।

आखिर, एक दिन मेजर ने देखा कि गोला-बारूद और सत्तुओं तक की रसद का खात्मा होने जा रहा है। सौ मील के घेरे में छापामारों को सामान पहुँचाना असंभव हो जायगा और जवानों का क्या होगा? मेजर पृथ्वीचंद चिंतित हुए, किन्तु कर्तव्य-पालन के सामने चिन्ता पल ही भर में गायब हो गई। वह छापा-मार दलों को उत्साहित करने निकले। हफ्तों का काम दिनों में, और दिनों का काम घंटों में होने लगा। सत्तुओं के सहारे ही जवान लड़ने लगे, छापे मारने लगे और बढ़ने लगे। सौ मील के घेरे में दुश्मन का नाम न बचा। सब लोग अपने छोटे-छोटे देहातों में, छोटे-छोटे घरों में बसने लगे। लद्दाख की घाटी में फिर से जीवन दिखाई देने लगा।

इसी बीच समाचार मिला कि हवाई जहाजों की कुमुक पहुँच गई है। छापामार दलों का काम हवाई बम-वर्षा से सहज पूरा हो जायगा। और मेजर पृथ्वीचंद के जवान अपनी सफलता पर हँसते हुए हवाई जहाजों का स्वागत कर रहे थे।

मेजर पृथ्वीचंद (२, बटालिन डोगरा रैजिमैंट) को कर्तव्य-परायणता और अपने जवानों को लगातार कर्तव्य-पथ पर अग्रसर

करने के उपलक्ष में १५ अगस्त, १९५३ को 'महावीर-चक्र' की उपाधि प्रदान की गई।

: २४ :

ब्रिगेडियर कन्हैयालाल अटल

जाड़ा भी ऐसा है कि हड्डियों के अन्दर-ही-अन्दर घुसा जाता है। बरानकोट, जरसी, और कसी हुई पोशाक काम नहीं दे रही। लगता कि सरदी जवानों को ठंडा कर देगी। रात-दिन, कई बीत गए। पर जोजिला के पार जाकर कारगिल पर अधिकार करने की हौंस जमी-जमी जा रही थी। और भारतीय जवान जोजिला के उस-पार जाने के लिए तड़प-तड़प रह जाते हैं। सोचते हैं, दुश्मन के साथ दो हाथ हो जायँ, तो गरमी आ जाएगी। ठंडक से जमी हुई जान में जान आ जायगी। लेकिन जोजिला के उस-पार दुश्मन की छावनी मजबूत है।

ब्रिगेडियर अटल ने अपने निश्चय में ढील नहीं आने दी। उनका उत्साह अब भी, कई रात-दिन के बाद, वैसा ही, और वही है। उन्हें निश्चय था, वह कामयाब होंगे। उनका धीरज उन्हें सफलता की चोटी पर पहुँचा कर रहेगा।

और एक रात······

जोजिला की पहाड़ी पर दुश्मन की गोलाबारी होने लगी। उसे लगा कि ब्रिगेडियर ने अपनी फौज को उस राह से पार कर

लेने की ठानी है। लेकिन पल्टन की एक टुकड़ी बढ़ी थी, महज़ इसलिए कि दुश्मन की ताकत उधर लग जाय। दुश्मन का निशाना उसी जगह जा टिके। रात भर दुश्मन उस ओर ताकत के साथ बढ़ता रहा। वह रोक रहा था ब्रिगेडियर अटल की पल्टन को, लेकिन पल्टन जोजिला पार कर चुकी थी। इतने से ही, लेकिन, बात पूरी होने वाली नहीं थी। जोज़िला से पार पिंडरास में दुश्मन खंदकों में मजबूती के साथ जमा बैठा था। पूरे साजो-सामान के साथ लैस दुश्मन के साथ मुकाबला हुआ।

नवम्बर १, १९४७ के बाद आज १५ नवंबर थी—और आज जवानों की नसों में गरम लहू बह रहा था। ठंडक से जमा खून पिघला तो दम में दम आया। लेकिन दुश्मन जम कर और तन कर बैठा था। जैसे फौलाद की भारी भरकम दीवार खड़ी करदी गई हो। लगातार ४८ घंटे की मार का असर कुछ भी न हुआ। हर हमले का जवाब था कि कारगिल जाने के लिए कुर्बानी चाहिए। इतनी गोलाबारी हुई कि बस धुआँ उठा और पहाड़ों में घुलमिल गया।

ब्रिगेडियर अटल ने निश्चय किया: मन-ही-मन। अपनी जान दे दूँगा, अपनी जान देकर कारगिल पहुँचना होगा। कारगिल पर अधिकार करना है। उन्होंने सब से आगे जाने वाली बटालियन के अगले सिरे पर खुद-ब-खुद बढ़ना शुरू किया। साथी अफसरों ने देखा तो दंग रह गए। इतना बड़ा खतरा उठाने का फायदा? और उन्हें खुद-ब-खुद उन्हीं के अन्दर से जवाब

मिला—"खतरा उठाए बिना कामयाबी नहीं हो सकती।"

ब्रिगेडियर अटल के नेतृत्व में धावा हुआ। इतने तूफानी जोर का हमला किया गया कि ब्रिगेडियर अटल के जवान यह भी न जान पाए कि कब आँधी आई, और कब दुश्मन की फौलादी दीवार केवल चादर बन कर उड़ गई। दुश्मन की खंदकें खाली हुईं और कारगिल का रास्ता साफ हुआ। कारगिल पहुँचना है, कारगिल पर अधिकार होगा।

लेकिन कारगिल चार मील की दूरी पर है। दुश्मन ने आखिरी बार जोर आजमाया। वह अड़ा, और अटल की पल्टनें रुकीं। लेकिन ब्रिगेडियर रुके नहीं। उन्होंने अग्रणी बटालियन का साथ छोड़ा। दो कम्पनियाँ साथ लीं, और कारगिल की ओर बढ़ने लगे। पहाड़ी पगडंडियों का तंग रास्ता—एक ओर पहाड़, और दूसरी ओर गहरी खड्ड, रास्ता पहचाना हुआ भी नहीं, पर कारगिल आँखों में था। राह की परेशानियाँ और राह की तकलीफों का बस एक इलाज था—कारगिल। पहाड़ी पगडंडियों से बढ़ते और गिरते-पड़ते ब्रिगेडियर ने देखा कि वह अपनी कंपनियों समेत दुश्मन के पिछली ओर जा पहुँचे हैं। दो पाटों में दुश्मन घिर गया। बिगेडियर ने जान कुर्बान कर दी थी। और इसी कुर्बानी के बल पर दुश्मन दो पाटों में पिसने लगा। पीछे से बिगेडियर अटल अपनी दो कंपनियों के साथ मार कर रहे थे, और सामने से बाकी बटालियन।

कारगिल सामने था। २३ दिन के संघर्ष का नतीजा था कि

२३ नवम्बर १९४८ को ब्रिगेडियर अटल का अपनी बटालियन के साथ कारगिल पर अधिकार था।

ब्रिगेडियर अटल के साहस और अपनी जान की परवाह न करने का ही यह फल था कि बटालियन का हर जवान हरदम अपने को ताजादम महसूस कर रहा था। विपरीत अवस्था में भी हर जवान अपने निश्चय पर स्थिर था।

इस वीरतापूर्ण कार्यवाही के लिए २६ जनवरी १९५२ के दिन ब्रिगेडियर कन्हैयालाल अटल को "महावीर-चक्र" का पदक भेंट किया गया। किन्तु खेद है कि पदक भेंट होने से पूर्व ही ब्रिगेडियर अटल का नवम्बर १९५० में स्वर्गवास हो चुका था। देहावसान के समय ब्रिगेडियर अटल उत्तर प्रदेश के स्थानापन्न एरिया कमांडर थे। शिकार-सम्बन्धी एक दुर्घटना के कारण उनकी मृत्यु हो गई थी।

पदक प्रदान करने के विवरण में कहा गया है कि इस समूची सैनिक कार्यवाही में ब्रिगेडियर अटल ने शत्रु की भयंकर गोला-बारी होने पर भी अपनी जान की रक्षा की परवाह न करते हुए अपूर्व नेतृत्व और व्यक्तिगत साहस का परिचय दिया। उनकी इस मिसाल से ब्रिगेड के सभी अफसरों और आदमियों में ऐसी शक्ति और भावना का संचार हुआ कि लद्दाख प्रांत में सैनिक-कार्यवाही का सफलता पूर्वक अंत हुआ।

× × × ×

काश्मीर घाटी के युद्ध में वीरता और साहसपूर्ण कार्यों के उपलक्ष में अन्य अनेक शूरवीरों को भी "महावीर-चक्र" प्रदान

किये गए हैं।

उनमें हवाई-सेना के विंग कमाण्डर मीनू मेरवान इंजिनियर और स्क्वाड्रन लीडर सिडनी बासिल नोरोन्हा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों हवाई-सेना के अफसरों ने युद्ध के पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों में हवाई-आक्रमणों का ऐसा अच्छा आयोजन किया था कि भू-सेनाएँ विजय प्राप्त करने में सफल हुईं। कई अवसरों पर इन अफसरों को भी स्वयं खतरे में पड़ना पड़ा, लेकिन अनोखी सूझ और साहस के बल पर वे उससे बाहर हो गए। इसके अलावा, हवाई-हमलों के लिए पूरे साजो-सामान के बिना भी उनके दल लगातार कामयाब होते रहे, लेकिन उसका श्रेय इन अफसरों को ही था।

वीर-चक्र-विजेता

: २५ :

नायक बीरसिंह

चढ़ाई तो चढ़नी ही है। और दम फूल जाय, तो साँस लो, लेकिन साँस लेने की आवाज न हो। घुप्प अंधेरे में फौजी बूटों की आवाज और खुरियों से टकराकर पत्थर से आग की चिंगारी न निकले। महज चीड़ के लंबे-लंबे दरख्तों से साँ-साँ और सी-सी होती रहे, और उसीमें गुम-सुम ८२०० फुट की चढ़ाई पार करनी होगी।

जाड़े के दिन थे। जब दुनिया अंधेरे में खो गई, तो डोगरा रैजिमैंट को मार्च का हुक्म हुआ। काश्मीर के सलामाबाद की एक पहाड़ी पर दुश्मन के घेरे को तोड़ डालो, पर साँस लेने की आवाज न हो। ठंडी हवा जोरों पर थी। डोगरा रैजिमैंट के सिपाहियों ने बरानकोट पहने। कंधों पर भरी-भराई तैयार बंदूकें लटक रही थीं। हवा का झोंका जोर से आता और बरान-कोट को भेदकर जिस्म में चुभ-चुभ जाता। लेकिन हुक्म था—सलामाबाद की ८२०० फुट ऊँची पहाड़ी पर अंधेरे में डूबे-डूबे गुम-सुम पहुँच जाओ।

और २० मई १९४८ की इस अंधियारी रात में डोगरा रेजिमेंट नियत स्थान पर पहुंच गई। दुश्मन की दो बटालियन उस पहाड़ी पर खंदक खोदकर बैठी थी। पिछले छः माह से दुश्मन ने इस मुहासरे को पूरी ताकत लगा कर मजबूत किया था। और डोगरा रेजिमेंट रात-ही-रात में ढेर करना चाहती है।

चीड़ के इस दरख्त की आड़ से निकलकर, उस दरख्त की आड़ में होते हुए रेजिमेंट लगातार आठ घण्टे पहाड़ी पर चढ़ती रही। सांस लेने की आवाज न हो, जूतों की ठोकर से चिनगारी न निकले। चीड़ के घने जंगल में सिवा उन दरख्तों के, कानों-कान किसी को खबर तक न हुई। और चीड़ के दरख्तों की ईमानदारी की भी हद थी। कहते हैं, लम्बे आदमी की अक्ल अकसर टखनों में होती है, लेकिन चीड़ के दरख्तों ने सिर ऊँचा करके डोगरा-रेजिमेंट के हर सिपाही को हिफाजत का संदेशा दिया। और उस पहाड़ी पर पहुँचते ही ६ बजे हमला हुआ। पूरे जोर के साथ। पूरी आवाजों के साथ कि दुश्मन जाग जाय। और आमने-सामने होकर लड़ सकें।

इस हमले से बेखबर दुश्मन के होश उड़ गए। लेकिन यह क्या? अरे! डोगरा रेजिमेंट घिर गई शत्रु की सुदृढ़ रक्षा-पंक्ति में। आप-से-आप शत्रु के घेरे में सारी-की-सारी रेजिमेंट दाखिल हो गई। न आगे राह, न पीछे, न दाएँ, न बाएँ। चारों ओर शत्रु-ही-शत्रु! गोलियाँ दागनी मुश्किल हैं। बंदूकों पर संगीनें चढ़ा लो। संगीनों की नोकों पर दुश्मन को उछाल-उछाल

फेंको। शायद कोई रास्ता साफ हो जाय। और डोगरों ने कबाइलियों को संगीनों की नोकों पर उछालना शुरू किया। कितनी खतरनाक हालत थी, सारी रैजिमैंट की जान तबाही में फँसी थी।

कहाँ से नायक बीरसिंह को खयाल आया : उसे अपने ही दल की बेकार ब्रेनगन दिखाई दे गई। बेचारी ब्रेनगन बिना सिपाही के करती भी क्या ! लेकिन बीरसिंह के हाथ लगी, तो कमाल दिखाने लगी। उसने देखा, दुश्मन मशीनगनों से बौछार कर रहा है। उसने ब्रेनगन से गोलियाँ दागनी शुरू कीं। मशीन-गनों को चलाने वाले बात-की-बात में ठंडे पड़ गए। मशीन-गनें, जो कुछ ही देर पहले आग बरसा रही थीं, चुपचाप पड़ी थीं। और मतवाले बीरसिंह की ब्रेनगन ने विकराल रूप धारण कर लिया था। ब्रेनगन की सीध में जो भी पड़ा, वह टिक न सका, वह गिरा, और कभी न उठने के लिए गिर पड़ा। नायक बीरसिंह दुश्मन की एक के बाद एक खन्दक में कूदता और फांदता दुश्मन को चिर-निद्रा में सुला रहा था। और तभी उसके सिर में एक गोली लगी। बीरसिंह अपनी ब्रेनगन सहित दुश्मनों की लाशों पर पाया गया।

बीरसिंह के इस एकाएक हमले से रैजिमैंट खतरे से बाहर हो गई। और दूसरी ओर दुश्मनों की खन्दकों में लहू की धाराएँ बहती दिखाई दे रही थीं। बीरसिंह ने जान तो दी किंतु विजय का सेहरा बाँध कर। डोगरा रैजिमैंट का हर सिपाही बीरसिंह की

इस महान् वीरता और अपूर्व साहस पर आश्चर्य कर रहा था।

नायक वीरसिंह को अपनी कर्तव्य-परायणता, अपूर्व साहस एवं बलिदान के उपलक्ष में २८ फरवरी, १९५० को मरणोपरान्त "वीरचक्र" की उपाधि प्रदान की गई।

: २९ :

लाँस नायक लालबहादुर राना

प्रथम विश्व-युद्ध में भारतीय-सैनिकों ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया था, उसकी विदेशियों ने भी तारीफ की। भारतीय सैनिकों ने बहादुरी के जो जौहर दिखाए थे, वह बंदूक, तोप, संगीनों या मशीनगनों के बल पर ही नहीं थे। कई-कई बार तो वह जर्मनों के साथ निहत्थे भी लड़े थे। और उस युद्ध में सबसे खतरनाक थी गोरखों की खुकरी। खुकरी को देखते ही जर्मन हवा हो जाते थे। इसी खुकरी के आतंक का प्रदर्शन काश्मीर के युद्ध में भी हुआ। कहा जाता है, जब तक गोरखा-सैनिक के पास खुकरी रहती है, उसे ऐसे लगता है, जैसे, इन्द्र का वज्र-अस्त्र उसे प्राप्त हो।

३ सितम्बर १९४८ को लालबहादुर(१/८ गोरखा राईफल्स)को तीन अन्य साथियों सहित आज्ञा हुई कि दुश्मन के इलाके में जाकर खोज-खबर करो। इस समय दुश्मन काश्मीर के मिविंगुल गली के क्षेत्र में पड़ा था। चारों सैनिकों ने सूचना दी कि शत्रु

खंदकें खोद रहा है और सैन्यदल में वृद्धि करने जा रहा है।

चारों सैनिक अत्यधिक सतर्क और चौकन्ने रूप में जा रहे थे। जब वह एक छोटे-से जंगल के बाहरी हिस्से तक पहुँचे, तो लाल-बहादुर ने छिपकर धावा करने का निश्चय किया। थोड़ी ही देर बाद राना ने देखा कि दुश्मन का एक फौजी दस्ता आ रहा है। इस दस्ते की संख्या लगभग २० थी। उनके पास एक तीन-इंची तोप थी और वह उसी की ओर बढ़ रहे थे। कहाँ बीस और कहाँ एक। अगर बीस आदमी एक ही पर झपट पड़ें तो उसकी हालत का अनुमान करना कठिन नहीं। किन्तु गोरखा-वीर तो एक ही बीस से भी ज्यादा था। दस्ते ने लालबहादुर को पार करना था कि वह खुकरी लेकर बाघ की नाईं उन पर झपटा। इस एकाएक हमले से उनके होश उड़ गए। उन्हें भागने के सिवा कोई चारा ही न दीखा। दुश्मन के बीस-के-बीस जवान गीदड़ों की तरह भाग रहे थे। और लालबहादुर विजयी होकर तीन-इंची तोप तथा बारूद और शस्त्रों को स्थिर-भाव से देख रहे थे।

शत्रुओं को भगाकर विजय-उल्लास में वह लौट रहे थे। लौटते समय उन्होंने देखा ५ या ६ खच्चरों पर रसद लेकर शत्रु का दस्ता आ रहा है। तत्काल लालबहादुर और उसके साथी पास के झंखाड़ों में जा छिपे। शत्रु ज्यों ही उनसे ८-१० गज तक आ पाया था कि गोरखा-वीरों ने चमचमाती खुकरियों से उन पर हमला बोल दिया। खुकरियों की चमक देखते ही शत्रु ने रसद और खच्चरें छोड़ीं और आँधी की तरह भाग खड़ा हुआ। शत्रु और

हमारे सैनिकों के बीच फासला इतना थोड़ा था कि उन पर गोली चलाना संभव नहीं था। ऐसी दशा में सिवा खुकरी के अन्य चारा नहीं था। तिस पर खुकरी से गुर्खा सैनिक इतनी फुर्ती और सफाई से वार करता है कि आदमी का बचना असम्भव होता है। प्रायः गोरखा लोग बड़े-बड़े जंगली भैंसों की गर्दन खुकरी से एक ही वार में काट डालते हैं। इस वीरता-प्रदर्शन में दूसरा वार करने की स्वीकृति नहीं होती। तो फिर ऐसी खुकरी से आदमी को काट फेंकना तो महज गाजर-मूली के समान ही समझा जाता है।

अपनी जान को इस प्रकार खतरे में डालकर अपूर्व साहस एवं निश्चय के प्रदर्शन के उपलक्ष में २ मार्च १९५० के दिन लाँस नायक लालबहादुर राना को "वीर-चक्र" प्रदान किया गया।

: २७ :

हवालदार जनार्दन सूबेदार

तड़ातड़ गोलियाँ चलने लगीं। शत्रु ने खबर पाते ही तूफ़ान बरपा कर दिया। अंधेरी रात में मराठा लाईट इंफेंट्री की तीसरी बटालियन सन्न रह गई। दुश्मन की गोलियों का जवाब देना खतरे से खाली नहीं था। पीर ठिल नक्के की चढ़ाई पर चढ़ती हुई सेना रुक गई। पहाड़ की चोटी पर बैठा शत्रु गोलियाँ दाग रहा था और मराठा बटालियन के सैनिक पहाड़ की छाती से

चिपट गए। रेंगते हुए पहाड़ की चढ़ाई चढ़ना, शत्रु का निरन्तर गोलियों की बौछार करना कितना बड़ा खतरा था। लेकिन खतरा ही तो वीरों की परख करता है। पहाड़ की चोटी पर बैठे दुश्मन की मशीनगनें चुप नहीं। अंधेरे में कहाँ से कैसे उसे जवाब दिया जाय। जरूरी है कि दुश्मन का भेद लिया जाय। बिना भेद के शत्रु पर वार खाली भी जा सकता है। और अगर भेद लगाने में ही सैनिक तनिक-सी भूल कर गया, तो ओह! सारी बटालियन का नाश समझो।

रात-ही-रात में पता ले लेना होगा। दिन निकलने तक शत्रु पर हमला होगा। इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेने के लिए छाती चाहिए। जनार्दन सूबेदार ने कहा :

"मैं पूरी करूँगा यह बात!"

"देखना, शत्रु के हाथों पड़ गए तो सारी बटालियन का नाश हो जायगा।"

"मेरा कर्तव्य मेरे साथ है। या तो सारी सूचना लेकर जीवित लौटूंगा, अन्यथा शत्रु के हाथ पड़ने से पूर्व ही प्राण दे दूँगा।"

"इसी अंधेरे की काली चादर को ओढ़े जाओ, और इसी में लौटो।"

"सूर्योदय तक तो हमारे सैनिक शत्रु को भगाकर इस क्षेत्र पर अधिकृत होंगे। आप लोग विश्वास करें। मैं अपनी जान की सौगंद खाकर लौटने का प्रण करता हूँ," जनार्दन ने कहा।

जनार्दन के वीरता-पूर्ण प्रण से प्रत्येक सैनिक में एक नवीन

स्फूर्ति और उत्साह उत्पन्न हो गया। जनार्दन अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करे, इसके लिए हर किसी ने अन्तःकरण से कामना की।

× × ×

युद्ध-घोषों से पहाड़ी-प्रदेश-गूँज उठा था। पीर ठिल नक्के की पहली पहाड़ी पर मराठा सेना के वीरों का अधिकार था। पीर ठिल नक्के की सब से ऊँची चोटी पर कब्जा करना है। शत्रु आग बरसाता है, तो बरसाता रहे। पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते जाओ—चढ़ते जाओ। विजय तुम्हारी है। तुम्हें कौन रोक सकता है। झंगड़ के इस इलाके में दुश्मन आज नहीं रह सकता। जनार्दन आगे-ही-आगे सैनिकों का नेतृत्व कर रहा था। दुश्मन पहली चोटी से हटा, और दूसरी चोटी से गोलियाँ दागने लगा। उसकी ताकत बढ़ गई थी। उसका दबाव बढ़ गया था। जनार्दन ने साथियों को एकत्र किया। घिर जाने पर किया-कराया धरा रह जायगा। इसलिए सँभलो। और सँभलो ही नहीं। बाघ की नाईं झपटोगे, तो दुश्मन टिक नहीं सकता। उसमें साहस नहीं।

दिशाएँ गूँज उठीं। युद्ध-घोषों की ध्वनि से शत्रु का दिल दहल गया। पहाड़ की सीधी ढलान पर भारतीय सैनिक ऐसे सरपट चढ़ रहे थे मानो सपाट मैदान हो। दुश्मन की गोलियों की बौछार सामने से आ रही थी। जैसे हर गोली आप-से-आप निःशक्त होकर गिर रही थी। और मराठा सैनिक बढ़ रहे थे; आखिरी चोटी पर कब्जा कर लेने के लिए। ऊपरी स्थल पर पहुँच-कर सैनिकों ने एकाएक हमला किया। इस हमले के कारण दुश्मन

को जान बचानी मुश्किल हो गई। जो कुछ ही क्षण पहले गोलियों की बौछार कर रहा था, उसे भागना पड़ा। वह भाग गया और पीर ठिल नक्के पर भारतीय-सेना का अधिकार था।

जनार्दन सूबेदार ने जो प्रण किया था, वह पूर्ण हुआ। अपने जीवन को झोंक देने वाले ही बात के धनी होते हैं। लाँस हवालदार जनार्दन सूबेदार को इस कर्तव्य-पालन और भीष्म-प्रण की पूर्त्ति के उपलक्ष में २६ फरवरी १९५० को "वीर-चक्र" प्रदान किया गया।

: २८ :

सिपाही ठाकुरसिंह

नौशहरा की एक पहाड़ी पर से तड़तड़-तड़तड़ गोलियाँ बरसने लगीं। और बरसने क्या लगीं, बरसती ही रहीं, बरसती चली गईं। लेकिन डोगरा रैजिमैंट की चौथी बटालियन के जवान रुके नहीं, बढ़ते गये—बढ़ते गये।

दुश्मन था, कि पहाड़ी के उस पार। बटालियन का हर सिपाही उसकी नजर में था। तिस पर दुश्मन ऊँचाई से मार कर रहा था। बटालियन के जवान को गोली लगी। वह घायल हुआ। वह गिरा। और इसी तरह एक-एक करके कई घायल हो गए। बचे जवान फिर भी बढ़ते रहे, बढ़ते रहे। हर जिंदा कदम

आगे—और आगे बढ़ता रहा—बढ़ता रहा।

दुश्मन था, कि उसका हौसला पस्त होने लगा। उसने देखा, इतने जवान घायल हो गए, पर हर जिंदा कदम बढ़ रहा है— बढ़ता आ रहा है। रुकना नहीं। उसकी बन्दूकों की नालियों से निकलने वाली गोलियों की रफ्तार में तेज़ी आई। उसकी मशीनगन से छूटने वाली गोलियों की रफ्तार में तेज़ी हुई। पहाड़ी के उस पार इतना जोश फैला कि हर आदमी मानो आखिरी बार लड़ने, और मरने को तैयार हो गया। हर आदमी के कदमों की रफ्तार में हवा-जैसी तेजी थी। हर आदमी के हाथ काम कर रहे थे; अनजाने ही इतनी तेजी थी कि उन्हें खुद अपने ऊपर हैरानी थी।

और डोगरा रैजीमेंट ने हर जान देकर, हर जवान की कुर्बानी देकर भी पहाड़ी पर अधिकार कर लेना था। आगे बढ़ने पर गोलियों का मुकाबला था; पीछे कदम हटाना मौत के मुँह में ढेर होना था। और ऐसी मौत से तो गोलियों की चोट को छाती पर लेना आसान था। और गोलियाँ लगने लगीं, गोलियाँ घायल करने लगीं, गोलियाँ मारने लगीं। डोगरा जवान जवाब में गोलियाँ नहीं दाग सकता। गोलियों का जवाब गोलियों से नहीं दे सकता। उसमें जोश है, लेकिन जोश में उबाल नहीं, बौखलाहट वहाँ नहीं। दुश्मन उस पार पहाड़ी की चोटी की आड़ में पूरे जोश के साथ मार कर रहा है।

बटालियन के जवान घायल हुए। घायल हुए तो क्या,

सैक्शन कमांडर बढ़ने लगे पहाड़ी के उस-पार तक जा पहुँचने के लिए। दुश्मन से आमने-सामने दो-हाथ कर लेने के लिए। इतने साथी घायल हो गए, और एक भी गोली काम नहीं आई। हर बन्दूक की नाली अपनी चुप्पी पर शरमा रही थी। और सैक्शन कमांडर और ठाकुरसिंह ने चाहा कि इस चुप्पी को भंग तो करें। और दोनों के कदमों में एक जोश था। जोश था कि दुश्मन को नजर भर देख तो लें। आड़ में बैठे बहादुर दुश्मन से आमने-सामने तो हो लें। अभी पन्द्रह मिनट भी नहीं बीते थे कि सैक्शन कमांडर के गोली लगी। एक लगी, दूसरी लगी। सैक्शन कमांडर ने गरज कर कहा, "ठाकुरसिंह! जीते जी पीछे न हटना। इस पहाड़ी पर अधिकार करना है। तुम विजयी हो। तुम ···"

ठाकुरसिंह ने अपनी आँखों के सामने देखा, सैक्शन कमांडर के हिलते होठ रुक गए हैं—थम गए हैं। उनकी गरदन ढीली होकर लुढ़क गई है। सैक्शन कमांडर का आखिरी सन्देश, सैक्शन कमांडर का अन्तिम आदेश, सिपाही ठाकुरसिंह की हर सांस में घुल-मिल गया। उसके रोम-रोम में वह सन्देश, वह आदेश बस गया। और सिपाही ठाकुरसिंह की ब्रेनगन ने इतनी लम्बी शांति को भंग किया। जैसे भारी बटालियन की राइफलों में प्राण आ गए। दुश्मन ठाकुरसिंह की नजरों के सामने था। वह चाहता तो एकाकी पीछे हट सकता था। लेकिन पीछे हटना भारतीय सेनानी, भारतीय सिपाही का काम नहीं।

ठाकुरसिंह को एकाकी पाकर दुश्मन ने घायलों की ओर लपकना चाहा। दुश्मन ने चाहा कि गिद्धों की तरह उन पर टूट पड़े। लेकिन ठाकुरसिंह की ब्रेनगन ने वह आँधी ला दी कि गिद्धों में उड़ने की भी ताकत न रही। दुश्मन के सिपाही जहाँ-के-तहाँ रुके रहे। और ब्रेनगन चलती रही—चलती रही। सिपाही ठाकुरसिंह एक नहीं, अनेक के रूप में जवाबी हमला कर रहा था।

और तब, एकाएक दुश्मन ने एक बार फिर जोर दिखाया। उसे अपना रास्ता साफ करना था। घायलों को असहाय दशा में पाकर उनका अंत करना था। पर ठाकुरसिंह की ब्रेनगन ने जो दीवार बना दी थी, उसे ढाहना आसान नहीं था। उसने एक दिशा से मार शुरू की। लेकिन एकाकी ठाकुरसिंह की अनगिनत गोलियों की मार दुश्मन को असह्य हो उठी। उसके पाँव उखड़े, और उखड़ते ही चले गए। उसने पहाड़ी का मुहासरा छोड़ा, और छोड़ता ही गया। सिपाही ठाकुरसिंह का जवाबी हमला कामयाब हुआ। उसने घायल साथियों को बचा लिया और वह पहाड़ी भारतीय सेना के अधिकार में थी।

एक सिपाही भी क्या कर सकता है, इसकी जिंदा मिसाल है सिपाही ठाकुरसिंह। दुश्मन की गोलियों का मुकाबला करने के लिए जो साहस और स्थिरता ठाकुरसिंह ने दिखाई, वह हर जवान के लिए आदर्श है। तनिक-सी घबराहट कितनी हानि पहुँचा सकती है, इसका अंदाजा इस घटना की विपरीत दशा को सामने रखकर सहज ही किया जा सकता है। कहते हैं, "एक

चना क्या भाड़ फोड़ सकता है," इस कहावत को वीर ठाकुर-सिंह ने ग़लत कर दिया है।

इस वीरता एवं साहसपूर्ण कार्य के उपलक्ष में १० मार्च १६५० को, ठाकुरसिंह को वीर-चक्र की उपाधि प्रदान की गई। प्रस्तुत पदक प्रदान करते समय वीर ठाकुरसिंह के विषय में कहा गया है:—"सिपाही ठाकुरसिंह ने भयंकर गोलाबारी में अपूर्व वीरता एवं स्थिरता का परिचय दिया है। उन्होंने निजी रक्षा की उपेक्षा करते हुए उच्चतम सैनिक परम्परा को स्थिर रखा है।

: २६ :

कैप्टिन सुच्चासिंह एम० सी०

"सोरे पहाड़ी दी टीसी ते बैठे गोलियाँ मारदे ने, सामणे हुंदे, तो लग्ग पता जांदा।"

"एह लुक्का-छिप्पी दी लड़ाई सानूँ ते भाऊँदी नईं, मर्द हुंदे ते सानूँ वेखदयांई नरस न जांदे"—और इन पंजाबी जवानों ने देखा कि पीर थिल निक्का की जिस चोटी पर दुश्मन ने अड्डा जमा रखा है, उस पर जाने का मार्ग नहीं। पहाड़ की चोटी है और उस चोटी पर जाने के लिए सीधी-सपाट चढ़ाई है। चढ़ाई भी ऐसी की पाँव फिसला, और सीधा नीचे। न कहीं रोक है, न पेड़ है, न पत्थर है—कि लुढ़के तो, कि फिसले तो रुक न सके, और पकड़ न कर सके।

मार्च १९४८ में, कैप्टिन सुच्चासिंह की कमान में दूसरी जाट रैजिमेंट को हुक्म मिला कि उस पहाड़ी से दुश्मन का सफाया कर दो। दुश्मन की सशस्त्र किलेबंदी तोड़ डालो, और सारा साजो-सामान अधिकार में आ जाना चाहिए।

हुक्म हुआ, तो पूरा होगा। पूरा करना धर्म है, उसे पूरा करना कर्तव्य है। रैजिमेंट ने उस सपाट चढ़ाई पर चढ़ना शुरू किया। चढ़ना क्या शुरू हुआ, दुश्मन की गोलाबारी और गोलियों को बुलावा दे दिया गया। दुश्मन ने आग बरसानी शुरू कर दी। अभी तो पहाड़ी की चोटी की पहली मंजिल भी नहीं पूरी हुई। लगभग ३०० गज की दूरी पर दुश्मन की किलेबंदी है। दुश्मन की आग की ओर किसी का ध्यान नहीं था, ध्यान था तो उस चोटी की ओर, जहाँ दुश्मन जमा बैठा था। जैसे गुरु-द्रोण ने कौरव-पांडवों की परीक्षा के समय एक चिड़िया की आँख को बींधने का आदेश किया था, तो परीक्षा देने वाले से गुरु ने प्रश्न किया था: "तुम्हें क्या दीख रहा है?" और परीक्षार्थी बारी-बारी से कह रहे थे: "चिड़िया, पेड़ की डाल पर बैठी चिड़िया, चिड़िया का झुका हुआ सिर"—किंतु जब अर्जुन से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया: "गुरुदेव, मुझे तो केवल वह आँख दीख रही है, जिसमें मेरे तीर का निशाना जा बैठेगा।" और इन शब्दों के साथ तीर चिड़िया की आँख को आर-पार कर गया। ठीक यही दशा हमारे कैप्टिन और उसके साथियों की थी। भले ही दुश्मन आग बरसा ले, पर आँखों में तो वह चोटी

थी, जहाँ से दुश्मन आग उगल रहा था।

कैप्टिन का हुक्म हुआ, 'रस्सियों के सहारे चढ़ा जाय,' और रस्से-रस्सियों की मदद से कम्पनी चढ़ती चली, बढ़ती चली। दुश्मन पहली मंजिल छोड़कर भागा। रास्ता साफ हुआ। उस आखिरी मंजिल तक पहुँचने का मार्ग खुला था। आग बरस रही थी—बरस रही थी। कंपनी की नजरों में चोटी थी, जिससे आग बरस रही थी—जो आग उगल रही थी।

और कैप्टिन ने समय न खोया। हर पल, हर चुटकी बजने तक का क्षण बेहद कीमती है। और जान जाने में शायद इतनी भी देर नहीं लगती। कैप्टिन ने आगे बढ़ कर—आगे चढ़ कर संगीनी हमला किया। दुश्मन के बीच खड़े होकर संगीनी हमला जारी था। भाई, हद दर्जे की लापरवाही है। अपनी जान नहीं देखते, अपनी रक्षा की परवाह नहीं करते, और संगीनों से मार-काट शुरू हो गई। ऊपर—ऊँचाई से गोलियाँ चलाना, आग बरसाना आसान है, "सामणे हुंदे ते लग्ग पता जांदा" के शब्दों ने दुश्मन को दिखा दिया कि सामना होने पर भारतीय वीर का मुकाबला करना मौत को बुलाना है। और उसकी आँखों के सामने मौत नाच रही थी, मौत खेल रही थी। संगीनों से दुश्मन के जवान गिर-गिर पड़ रहे थे, सदा को न उठ सकने के लिए।

पूरे पच्चीस जवान मौत की गहरी नींद में सो गए थे। और बाकी थोड़े-बहुत घायल और जीवित भाग गए। भागतों

पर गोलियाँ दागने से राइफलों ने मुँह मोड़ लिया। वीरों ने पीठ पर गोली दाग कर वीरता को लजाने से बचा लिया। कैप्टिन सुच्चासिंह और उनके साथी कह रहे थे: "सामणे ढूंढ्यांई लग्ग पता गया ने। गिद्ड़ां वाँग नस दे पये ने।"

"लुक्का छिप्पा वी कोई लड़ाई ए"—दूसरे ने कहा।

और कैप्टिन को सूचना मिली कि दुश्मन के २५ जवान मारे गए, १२० बम हाथ लगे हैं, एक तीन इंची तोप अधिकार में कर ली गई है, बहुत-सी राइफलें मिली हैं। और "जय-भारत" के नारे से सारी दिशाएँ गूँज उठीं। कम्पनी का हर जवान फिर से ताजा दम था। इतने लम्बे-चौड़े क्षेत्र में ऐसे कई हमले, और लड़ाइयाँ जीतने के लिए हर सिपाही में बेहद जोश, बेहद उत्साह था।

कैप्टिन सुच्चासिंह की इस कम्पनी की प्रस्तुत विजय का फल यह हुआ कि अगले ही दिन झंगड़ पर पूर्णतया भारतीय सेना का अधिकार था।

कैप्टिन सुच्चासिंह को विलक्षण वीरता, और सामयिक कार्यवाही तथा अपने साथियों को लगातार जोश दिलाने वाले कार्यों के उपलक्ष में २७ मार्च, १९५० को "वीर-चक्र" प्रदान किया गया। युद्ध के मैदान में वही कामयाब होता है, जो, एक तो समय को हाथ से नहीं जाने देता; दूसरे, जो भयंकर से भयंकर आफ़त में भी पड़ जाने पर अपने होशो-हवाश ठिकाने रखता है।

: ३० :

सिपाही जयदत्त जोशी

बीते चार दिनों से सूर्य की किरणें बादलों की मोटी-मोटी तहों को पार करने में असमर्थ थीं। काशमीर की घाटी बर्फीले मौसम की इंतजार में थी। और भारतीय सेनाएँ उस विस्तृत प्रदेश में फौजी कार्यवाहियों में व्यस्त थीं। यहाँ, वहाँ, सभी जगह रक्षा-चौकियाँ थीं। रक्षा-चौकियों के सिपाही गश्त करते, दुश्मन की टोह लगाते। मीलों-मील गश्त का सिलसिला जारी रहता।

और पाँचवें दिन···

अभी शाम का वक्त नहीं हुआ था। एकाएक बरफ पड़ने लगी। बरफ क्या पड़ने लगी, बरफ का तूफान आ गया। रक्षा-चौकियों के सिपाही गश्त पर थे। अपनी-अपनी चौकियों से दूर। बरफ ने रास्ता रोका। चौकियों तक पहुँचना असम्भव था। असम्भव जान पड़ा। एक चौकी पर दो सिपाही बुरी तरह बीमार हैं—ज्यों-त्यों चिकित्सा दल को समाचार मिला। बरफ का अंधड़ बेतहाशा जोर पकड़ रहा है। पहाड़ी मार्ग से होकर वहाँ तक पहुँचना कितना मुश्किल है। चिकित्सा दल में चिन्ता थी—कैसे दो साथियों को बचाया जाय। दो कीमती जानें बरफ के हमले की वजह से नष्ट हो जायँगी, अफसर के दिमाग में इससे परेशानी हुई। वह कदम-कदम चलते, और लौटते, और

लौटते और फिर लौटते। कैसे, क्या किया जाय। दो कीमती जानें···और उससे भी ज्यादा चिकित्सा दल का कर्तव्य। चिकित्सा दल ही नहीं बचाएगा, तो कौन···? कोई नहीं, कोई नहीं कर सकता। बरफ का तूफान बढ़ रहा था। अफसर के दिमाग का तूफान बढ़ रहा था। चिकित्सा दल में गंभीरता और चुप्पी का राज था। चिंता के मारे चिकित्सा दल का शिविर काला-काला दीख पड़ने लगा। हर आदमी परेशान था। हर आदमी के दिमाग में बीमारी से परेशान, बरफ की ठंडक से जमे-जमे दो जवानों की अनजानी सूरत आ-आ जाने लगी। हर आँख में दो जवानों की छटपटाती हालत ने घर कर लिया।

अंधेरा छा जाने से पहले·····दोनों जवानों की असहाय मौत·····खतरनाक मौत से पहले··· उन्हें बचाना चाहिए, उन्हें बचाया जाना चाहिए। चिकित्सा-दल का शिविर स्याह पड़ने लगा। शिविर की हर चीज काली होने लगी। दो जवान बरफ की सफेदी में खो-खो जाने लगे। अफसर का दिमाग परेशान था, चिकित्सा-दल का शिविर परेशान था, चिकित्सा-दल का हर सिपाही परेशान था। बरफ का तूफान बढ़ता गया, बढ़ता गया। रुकने का नाम नहीं, थकने के आसार नहीं। परेशानी·····तूफान·····बरफ·····बरफ पड़ रही थी····· बरफ पर बरफ जमी जा रही थी। परेशानी पर परेशानी !!!

× × ×

"जयदत्त ! जोशी जी—जोशी जी !!"

साँय-साँय की भीषण आवाज़ में नाम नहीं सुना। पहाड़ी की पतली-सी पगडंडी से बढ़ते हुए तीन जवान! आगे जयदत्त जोशी, पीछे-पीछे दो साथी। एक ही धुन थी, एक ही जगह सारी ताकत जा जमी थी। दो साथियों तक पहुँचना है। बीमार, जाड़े में अकड़े, असहाय दो साथियों की जानें—बहुत कीमती हैं वे। पगडंडी की एक ओर ऊँची पहाड़ी, दूसरी ओर गहरा खड्ड, बरफ का तूफान, सिर-मुंह लपेट कर बढ़े जा रहे हैं। तीन मील की राह थी। बहुत लम्बा सफर नहीं था, लेकिन उस वक्त लग रहा था, जैसे तीन मील लंबे-ही-लंबे होते जा रहे हैं। हर कदम के बाद वह तीन मील का सफर उतना ही आगे सरक जाता। उन्हें बचाना है, उनकी रक्षा करनी है। वे साथी हैं। वे कीमती जानें हैं। चिकित्सा-दल का शिविर अंधेरे की कलौंस में छिप गया है। चिकित्सा-दल के शिविर में परेशानी है—दो की नहीं, पाँच की। पाँच कीमती जानें ····· दो बीमार ·····तीन साहस के पुतले।

× × ×

गहरे अंधेरे में आँखें चमक उठीं। चार बीमार आँखें चमकने लगीं। घोर निराशा के बादलों को सूरज की किरणों ने भेद डाला। आकाश के सीने पर छाई बरफ के टुकड़े-टुकड़े छितर गए। आशा से चार आँखें चमक उठीं। चिकित्सा-दल के सैनिकों की छहों आँखों ने देखा ··उनका शिविर अंधेरे की गहरी अंधियारी में चिट्टा है। शिविर में समाचार पहुँचा ···· तीन साहस के पुतले

बीमारों की सेवा कर रहे हैं। अफसर परेशान नहीं·····शिविर परेशान नहीं·····अफसर की आँखों में आशा की चमक है······ शिविर चिट्टा है·····सारा शिविर जगमगा उठा।

× × ×

सिपाही जयदत्त जोशी ने कमाल कर दिखाया। बरफ मौत के मुँह में पहुँचाने के लिए तैयार खड़ी थी। उसने बढ़ कर अफसर से कहा था······"मैं जाऊँगा, उन साथियों की सेवा के लिए। भगवान करे, वे जिंदा हों। मैं उन्हें जिंदा ही लाऊँगा।" और दो साथियों के साथ जयदत्त ने बीमार साथियों की सेवा की। वे संभले। उन्होंने साथियों को पहचाना।

"तुम सब ने इतना खतरा उठाया।"

"कर्तव्य के सामने खतरा कैसा ?" जयदत्त ने कहा।

जयदत्त और उसके साथी चिकित्सा-शिवर में थे। शिविर में खुशी थी·····सारा शिविर खुश था। अफसर खुश था······हर सिपाही खुश था। दो कीमतें जानें बचा ली गईं, दो कीमती जानों की रक्षा कर ली गई।

सिपाही जयदत्त जोशी ने अपनी जान की परवाह न की, जयदत्त ने कर्तव्य के सामने जान को हेच समझा, जयदत्त ने चिकित्सा-दल का नाम चमका दिया······और भारत गणतंत्र ने जोशी को इस अपूर्व साहस के उपलक्ष में १ जुलाई १९५० को "वीर-चक्र"का पदक प्रदान किया। जोशी की वीरता और साहस आदर्श है, आदर्श रहेगा।

: ३१ :

नायक बालबहादुर मल

१७ मई १६४८ को ६-वीं गोरखा राईफल्स को आदेश प्राप्त हुआ, "पुन्छ की एक पहाड़ी पर अधिकार किया जाय।" आदेश मिलते ही सेना रवाना हो गई। सेना में हुक्म के सामने दूसरी कोई बात नहीं होती। हुक्म होते ही उसे पूरा करना चाहिए, पूरा करना होता है। चाहे जान जाय, चाहे सब-कुछ नष्ट हो जाय, हुक्म—हुक्म है।

और जब सेना बढ़ी तो नज़र आया कि पहाड़ी की एक जगह पर दुश्मन बैठा है। आगे बढ़ने के लिए उसे साफ करना निहायत ज़रूरी है। दो भारतीय पल्टनों में से एक की कमान बाल बहादुर-मल के हाथ में थी। बालबहादुर ने देखा, हमला करना ज़रूरी है। लेकिन दूसरी ओर एक कम्पनी है, भला यह फौजी क्यों कर सामना करेगा? दुश्मन के पास हथगोले थे, मशीनगनें थीं तोप थी। और इतना महसूस करते ही बालबहादुर ने जान पर खेलने की ठान ली। बालबहादुर ने हाथ में खुकरी संभाली और मशीन-गन पर जा हमला किया। खुकरी से एक-दो नहीं, चार-पाँच का सफाया होते ही दुश्मन ढीला पड़ा। ढीला क्या पड़ा······भाग उठा। एकाएक हमले से वह भौंचक रह गया। और बहादुरमल पाँच को मौत की घाट उतार तोप छीनने को बढ़ा। तोपचियों के साथ छीना-झपटी जारी थी कि एक दूसरी दिशा से सनसनाती

गोली आई। गोली बहादुरमल के सिर में लगी। गोली लगते ही खोपड़ी फट गई, और बहादुरमल शत्रु को भगाकर अनन्त निद्रा में सो गया।

बहादुरमल की वीरता से विजय का सेहरा भारतीयों को मिला और उस क्षेत्र से दुश्मन के हटते ही विजय का मार्ग साफ हो गया।

नायक बालबहादुर मल को इस पराक्रम के उपलक्ष में ८ जुलाई १९५० को मरणोपरांत "वीर-चक्र" द्वारा सम्मानित किया गया।

: ३२ :

सूबेदार प्रवीणसिंह

२२ सितम्बर १९४८।

निम्मू पहाड़ी के सामने की ओर दुश्मन खंदकों में जम कर बैठा था। पूरी एक कम्पनी के जवान रास्ता रोके खड़े थे। सूबेदार प्रवीणसिंह को इस इलाके पर एक लड़ाकू दस्ते के साथ हमला करने का आदेश दिया गया। वहाँ एक कम्पनी और एक फौजी दस्ता थी। दुश्मन की तिगुनी संख्या थी, लेकिन संख्या की ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना भारतीय जवान रवाना हो गए। रातभर सफर जारी रहा। अंधेरे-ही-अंधेरे में सोए दुश्मन पर हमला बोल दिया गया। अचानक हमले के कारण

शत्रु में भगदड़ मची। खंदकों में जम कर बैठों के पाँव उखड़ गए। "या खुदा, अभी दिन भी नहीं निकला और ये आ पहुँचे", "रात भर सफर किया होगा", ऐसी बातें करते हुए दुश्मन के जवान एक-एक कर भागने लगे।

सूबेदार प्रवीणसिंह की पल्टन ने आमने-सामने डट कर मुकाबला किया। आखिर, दुश्मन का किला टूटा और वह क्षेत्र हमारी सेनाओं के अधिकार में आ गए। दुश्मन की किलेबंदी भी टूटी, वह भाग भी गया, किन्तु यह सौदा इतना सस्ता न रहा। भागता दुश्मन हथगोलों से हानि पहुँचा रहा था। इधर घायल जवानों को सुरक्षित जगह पर पहुँचाया जाने लगा। सूबेदार प्रवीणसिंह खुद इस काम में साथियों की मदद कर रहे थे।

थोड़ी ही देर बाद, सबने देखा कि सूबेदार एक घायल को सहारा दे कर एक ओर हटा रहे हैं। इतने में एक बम फटा। बम से फूटी चिन्गारी सूबेदार के सिर में लगी, सिर फट गया। रक्त का फव्वारा फूट निकला। सूबेदार प्रवीणसिंह साथी के लिए प्राणों की आहुति देकर स्वर्ग सिधार गए।

सूबेदार की बहादुरी और उनके नेतृत्व का यह परिणाम था कि दुश्मन सहज ही भाग खड़ा हुआ था। भारत गणतन्त्र ने सूबेदार प्रवीणसिंह को मरणोपरांत ८ जुलाई, १९५० को "वीर-चक्र" पदक प्रदान कर सम्मानित किया।

: ३३ :

मेजर कर्मसिंह

राजौरी क्षेत्र।

६ अप्रैल १६४७ को मेजर कर्मसिंह की कमान में टैंकों का फौजी दस्ता चिन्गास की ओर बढ़ रहा था। ये टैंक आगे बढ़ने वाली पैदल सेना की मदद कर रहे थे। एकाएक दुश्मन की मशीन-गन की गोलियों से लड़ने वाली पदल सेना का मार्ग रुक गया। ऐसे समय और चारा न देख मेजर कर्मसिंह ने अपने टैंक को पैदल सेना के आगे कर दिया, ताकि वह आसानी के साथ पीछे हट सके। एक तंग और ऊबड़-खाबड़ सड़क से बढ़ते हुए मेजर ने देखा कि दुश्मन ने आगे की ओर सुरंगें बिछा रखी हैं। न ही सड़क इतनी चौड़ी है कि टैंक निकल सके। हालत यह थी कि एक ओर तो ऊँची पहाड़ी और दूसरी ओर ५० फुट गहरा गड्ढा; तनिक भी फिसले कि टैंक सहित सबका सफाया हो जाय। इसी असमंजस में पल भर भी नहीं बीता था कि दुश्मन ने बुरी तरह आग बरसानी शुरू कर दी। इसके अलावा अंधेरा होने जा रहा था। लाचार, क्या करें, सिवा पीछे हटने के और चारा नहीं था।

ऐसी भीषण स्थिति को देखकर मेजर कर्मसिंह को अचानक जो सूझा, तो बरसती आग में टैंक से बाहर आ गए। उन्होंने टैंकों को हुक्म दिया कि पीछे हटो, और तब तक हटते जाओ,

जब तक पूर्ण सुरक्षित न हो जाओ। इस प्रकार अपनी जान को जोखिम में डालकर वह इतने पीछे हटे कि अगले दिन पौ फटते ही वह धुआँधार युद्ध हुआ कि दुश्मन को रास्ता छोड़ देना पड़ा।

इसी घटना से एक ही दिन पहले की तो बात है। मेजर कर्मसिंह अपने टैंकों के दस्ते से बरवाली की पहाड़ी पर हमला करने वाली सेनाओं की मदद करने गये। लगातार पाँच घंटे तक घमासान लड़ाई होती रही। पैदल सेना पर दुश्मन की चौतरफा गोलियाँ बरस रहीं थीं। और इधर मेजर कर्मसिंह टैंक से सिर निकाल-निकाल कर अपने दस्ते को आदेश कर रहे थे। उन्हें अपने सिर की परवाह नहीं थी। एक ही गोली उनका काम तमाम कर सकती थी, पर एक सिर की चिंता कौन करता। कर्तव्य सौंपा गया था कि टैंकों की मदद से पैदल-सेना को कामयाब किया जाय। कामयाबी ही सब से बड़ी बात थी। इसलिए मेजर कर्मसिंह को अपनी चिंता न रही। उन्हें चिंता थी सफलता की, और इसीलिए पाँच घंटे की धुआँधार गोलियाँ में भी उनका सिर टैंक के बाहर रहा।

१० मार्च १९५० को "वीर-चक्र" पदक प्रदान करते हुए घटना विषयक विवरण में कहा गया है, "मेजर कर्मसिंह का अपूर्व साहस और व्यक्तिगत रक्षा के विषय में लापरवाही की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उनके सधे हुए नेतृत्व एवं कर्तव्य के प्रति निष्ठा के ही कारण चिन्गास की ओर सहजभाव से बढ़ा जा सका, और अंततः राजौरी पर अधिकार कर लिया गया।

यदि ऐसा न होता, तो न जाने कितने दिन और लग जाते राजौरी को हस्तगत करने में।"

काश्मीर युद्ध के समय मेजर कर्मसिंह सैंट्रल इंडिया हॉर्स (टैंक दल) के नेता था।

अशोक-चक्र-विजेता

: ३४ :

हवलदार बचित्तरसिंह

भारत में अंगरेजी राज "बंदर-बाँट" के जोर पर चलता रहा, अर्थात भारत के हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़ा-लड़ा कर अंगरेजों ने भारत को सब भांति निर्बल और क्षीण कर दिया था। किंतु स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर जैसे महापुरुषों ने "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध-अधिकार है" का मंत्र देशवासियों को प्रदान किया। उनसे पूर्व स्व० दादा भाई नौरोजी, रानडे तथा गोखले आदि अनेक भारतीय महापुरुषों ने अखिल भारतीय राष्ट्र महासभा के संगठन द्वारा देश को अंगरेजों के पंजे से छुड़ाने की कोशिश शुरू कर दी थी। कुछ समय बाद अखिल भारतीय राष्ट्र-महासभा को विश्व-पूजनीय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। राष्ट्र-पिता गांधी ने अहिंसा और सत्य के बल पर भारत को जिस तरह आजादी दिलाई, उसे देख कर दुनिया चकित रह गई। अक्सर यह होता है कि जब भी कोई देश किसी दूसरे के पंजे से निकलता है, तो लहू की नदियाँ बह जाती हैं। देश का शासन-प्रबन्ध नष्ट हो जाता है, लेकिन

"भारत की आजादी" अहिंसा और सत्य के बल पर आई, और उसका सारा श्रेय है राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी को।

१५ अगस्त १९४७ को अंगरेजों का शासन तो हट गया, लेकिन अपने शासनकाल में अंगरेजों ने देश को सैकड़ों भागों में बाँट रखा था। हिन्दू, मुसलमान के तीव्र मत-भेद के कारण भारत पाकिस्तान और भारत—दो टुकड़ों में बंटा। किंतु भारत में देसी राजा-महाराजों, नवाबों की छोटी-छोटी बेशुमार रियासतें थीं। स्व० सरदार वल्लभभाई पटेल ने जिस नीति कुशलता के साथ इस गुत्थी को सुलझाया, वह उन्हीं का काम था। उन्हीं के अथक यत्नों का फल है कि सैकड़ों भागों में बंटा भारत आज अखण्ड इकाई है। गणतन्त्र राज्य है।

स्व० सरदार पटेल के यत्नों से अनेक देसी-महाराजों तथा नवाबों ने अपने-अपने राज्यों का अंत कर दिया, लेकिन दक्षिण में निजाम की रियासत हैदराबाद ने भारत के अन्तर्गत होते हुए भी इस हठ को न छोड़ा। रियासत हैदराबाद के साम्प्रदायिक मुसलमानों ने निजाम हैदराबाद को भारत में शामिल होने में बड़ी भारी अड़चन पैदा कर दी थी। उन दिनों हैदराबाद में रजाकारों का जोर था। रजाकारों के नेता कासिम रिजवी ने भारतीय नेताओं के हर शांतिमय यत्न को बेकार कर दिया। इसलिए 'पुलिस एक्शन' के सिवा चारा न रहा। यद्यपि यह सैनिक कार्यवाही ३६ घण्टे के अंदर-अंदर ही समाप्त हो गई तथापि इस 'पुलिस एक्शन' में भारतीय सेना के अनेक वीरों ने

असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया।

प्रस्तुत घटना १६ सितम्बर, १९४८ की है। हवलदार बचित्तरसिंह के नेतृत्व में एक अग्रणी फौजी दस्ता नालदुग की ओर बढ़ रहा था। बचित्तरसिंह ने देखा कि नालदुग की ओर से दो सैनिक-मोटरें आ रही हैं। उन्होंने दस्ते को हुक्म दिया कि मोटरों पर गोली चलाई जाय और खुद केवल एक सिपाही को लेकर वह मोटरों की ओर बढ़ने लगे। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं, और बचित्तरसिंह मोटरों की ओर आगे-ही-आगे बढ़ते गए। गोलियों की बौछार में ही मोटरों के निकट पहुँचकर बचित्तरसिंह शेर की तरह उनपर झपटे। भला रजाकारोंमें दम ही कितना था. झट हथियार डाल दिए।

दोनों मोटरों तथा उनमें बैठे सब को अधिकार में कर बचित्तर-सिंह का दस्ता और आगे चला। देखा कि शत्रु एक चौकी पर दृढ़ता-पूर्वक जमा बैठा था। बचित्तरसिंह ने हमले का हुक्म देते ही आगे बढ़ना शुरू किया। वह शत्रु को धर-दबाने लेने की हौंस में भाग रहे थे कि चौकी से ३० गज के फासले पर एक बम फटा और उनकी टाँग घायल हो गई। टाँग तो टूट गई किंतु वह रुके नहीं, गिरे नहीं, लड़खड़ाए भी नहीं, और बढ़ते ही गए। उन्होंने एक हथ गोला फैंका और शत्रु को ठंडा कर दिया। उनके साथियों ने चाहा कि उनकी टांग के घाव की पट्टी हो जाय, लेकिन हवलदार बराबर कहने पर भी न माने। वह साथियों को उत्तेजित कर रहे थे कि बढ़े जाओ, रुको नहीं। साथियों में जैसे जोश

उमड़-उमड़ आ रहा था, और उन्होंने चौकी पर अधिकार कर लिया।

चौकी पर अधिकार हो जाने के बाद हवलदार एकाएक भूमि पर गिर पड़े। जान पड़ता था, जैसे उन्होंने अपने प्राणों को उस समय तक वश में कर रखा था, कि जब तक चौकी पर अधिकार न हो जाय।

उनके साथियों ने देखा कि निर्जीव होकर भी उनके ओठों पर मुसकान थी—विजय की प्रसन्नता उनकी मौन मुसकान में झलक रही थी। उपस्थित साथियों की आँखों से हर्ष और शोक की धारा बह निकली और सबने उच्चस्वर में "हवलदार बचित्तर-सिंह की जय" से दिशाएँ गुँजा दीं।

भारतीय गणतंत्र राज्य ने २५ फरवरी, १९५२ को "अत्यधिक विलक्षण वीरता" के उपलक्ष में हवलदार बचित्तरसिंह को मरणोपरान्त "अशोक-चक्र-प्रथम श्रेणी" से सम्मानित किया।

इस सैनिक कार्यवाही के समय हवलदार बचित्तरसिंह सिक्ख रैजिमैंट से सम्बन्धित थे।

× × ×

१३ सितम्बर, १९१८ की एक अन्य घटना है, जिसमें पाँचवीं गोरखा राइफल्स के नायक नरबहादुर थापा ने कमाल की शूर-वीरता दिखाई थी।

गोरखा राईफल्स की कंपनी तुंगभद्रा पुल के बाएँ तट से निकल रही थी। एकाएक शत्रु ने दो दिशाओं से गोलाबारी

शुरू कर दी। गोलाबारी होते ही कंपनी ने भी जवाब में गोली चलाना शुरू कर दिया। ऐसे विकट समय में आगे बढ़ना खुद-ब-खुद मौत को चुनौती देनी होती है, जैसे कोई जबरदस्ती जहरीले साँप के मुँह में अँगुली डालना चाहता हो। और थापा ने आव देखा न ताव, शत्रु की गोली-वर्षा में बढ़ना शुरू कर दिया। थापा के हाथ में खुकरी थी। १०० गज से भी अधिक दूरी पर शत्रु की गोलाबारी की चौकी थी। लेकिन थापा ने खुकरी नहीं बल्कि सिर को हथेली पर रख लिया था। भला किस की हिम्मत थी कि उस विकट-वीर को रोके; और थापा ने खुकरी से शत्रुओं को चित्त कर दिया।

शत्रु के ठंडा होते ही सेना का मार्ग साफ हो गया, और वह आगे बढ़ने लगी।

अपनी जान को हथेली पर रखकर थापा ने जिस महान् वीरता का प्रदर्शन किया, भारतीय गणतंत्र ने उसके उपलक्ष में नायक नरबहादुर थापा को "अशोक-चक्र—प्रथम श्रेणी" के सम्मान द्वारा विभूषित किया।

ऐसे महाबली हमारे देश की भावी सन्तान के लिए अनन्त-काल तक आदर्श बने रहेंगे।

: ३५ :

फ्लाईट लैफ्टीनैंट यू० ए० डी० क्रज

"मारो, मारो ! गिरा लो। वह दुश्मन का हवाई जहाज है। भारत का हवाई जहाज है। निशाना चूके नहीं। अगर चूक गए तो अखनूर-भिम्बर की सारी पट्टी पर फैले हुए पठान कबायली बमों की मार से तबाह हो जाँयगे।"

और दुश्मन की हवाई-मार तोपों ने भारत के हवाई जहाज को निशाना बनाया। एक, दो, तीन–हवाई जहाज पर मार होने लगी। भारतीय सैनिक उड़ाका दुश्मन का निशाना बन चुका था। उसने बम बरसाए। अखनूर-भिम्बर की पट्टीपर खंदकों में बैठ कबायली तबाह होने लगे। वह निकल नहीं सकता था। वह निशाना बन चुका था। और आखिर कबायलियों के निशाने का शिकार हुआ। हवाई जहाज पटखनियाँ खाता हुआ भूमि पर आ गया।

"काफिर है, पकड़ो, पकड़ लो!" और डी क्रज दुश्मन के सिपाहियों से घिरा हुआ फौजी अफसर के सामने हाजिर था।

"क्या तुम बता सकते हो कि भारत की सेना कहाँ-कहाँ और कितनी है ?" पाकिस्तानी अफसर ने पूछा।

हवाई सैनिक चुप था। चुप रहा।

"तुम्हें जवाब देना चाहिए। तुम्हें जवाब देना होगा," अफसर ने रौब दिखाते हुए कहा।

सैनिक बन्द आँखों के साथ मौन रहा।

"हम तुम्हें अपनी फौज में बहुत बड़ा ओहदा दे सकते हैं। हम तुम्हें जिन्दगी भर के लिए सुखी रखने का वचन देंगे। तुम्हें भारत की कार्यवाहियाँ हमें बतानी चाहिएँ।"

तिस पर भी सैनिक चुप रहा।

वहाँ खड़े सभी लोगों ने देखा कि भारतीय सैनिक जैसे चट्टान की तरह अचल है। वह डिग नहीं सकता। उसे डिगाया नहीं जा सकता। उसे लोभ से मोह नहीं। वह अपने देश का वफादार सैनिक है। वह पकड़ा जाकर मौत से खेल सकता है, लेकिन अपने देश को हानि पहुँचाने के लिए मुँह नहीं खोल सकता।

भारतीय सैनिक की इस हालत को देखकर पाकिस्तानी अफसर ने दूसरा हथियार आज़माने की सोची। उसने गुस्से के साथ कहा—

"क्रज, हमने भाईचारा दिखा दिया है। और देखो, अब तुम बोलोगे। तुम्हें बोलना ही पड़ेगा," इतना कहने के साथ अफसर ने सिपाहियों को इशारा किया। इशारा पाते ही सिपाही क्रज पर झपटे। क्रज पल ही भर में टिक-टिकी के साथ बाँध दिया गया। उसके वस्त्र उतार दिए गए। अफसर ने हुक्म दिया। उसके हुक्म के साथ ही क्रज पर सड़ासड़ बेंतों की मार पड़ने लगी।

क्रज की पीठ पर बेंतों के दाग पड़ गए। और कहते हैं, जिस समय तक क्रज होश में रहा, उसके ओंठों से केवल यही शब्द

निकलते रहे "जय भारत!" जय भारत !!"

"इस पाजी को गोली का निशाना बना दो। इस बेहूदे की शक्ल देखना भी गुनाह है। ये दुश्मन है। दुश्मन को मौत की सजा मिलनी ही चाहिए।"

"लड़ाई के मैदान में कैदी सिपाहियों को गोली का निशाना बनाना लड़ाई के नियमों के खिलाफ है। लेकिन मैं मौत से डरता नहीं। आप ही सोचिए, आपके जो सिपाही हमारी सेना के कैदी हैं, अगर उनके साथ भी यही सलूक हो, तो आप क्या कहेंगे," क्रज ने दृढ़ता के साथ कहा।

"हमें कायदे-कानून तुम से नहीं सीखने। अगर तुम अपनी सेना के भेद बता सकते हो, तो तुम्हें छोड़ दिया जायगा। अब भी वक्त है कि तुम संभल जाओ," अफसर ने कहा।

"प्राण रहते, आप इसकी आशा छोड़ दें," क्रज ने जवाब दिया।

और इसके साथ ही अफसर ने हुक्म दिया। कड़कती आवाज में वह बोला : "रैडी!"

क्रज टिक-टिकी से बंधा था। दो सिपाहियों ने राइफलें उठाईं। निशाना साधा। और तभी अफसर खिलखिला कर हंस उठा। वह क्रज की ओर लपका—और बोला, "हम तुम्हें मारेंगे नहीं। तुम हमारे दोस्त हो। हम तुम्हें दोस्त बनाना चाहते हैं। जिंदगी भर दोस्ती का वादा करते हैं।"

"इस बेहूदगी को छोड़ो। गोली दागना हो, तो यह सीना

हाजिर है। लेकिन मुझ से किसी भेद की आशा न करो," क्रज ने कहा।

और आखिर क्रज को फौजी जेल में डाल दिया गया। क्रज ३ दिसम्बर १९४७ से १९४८ तक दुश्मन की कैद में रहे। बीसियों बार दुश्मन ने उन्हें फुसलाया, धमकाया, लेकिन क्रज टस-से-मस न हुए। वह भारत के सच्चे सपूत बन कर अडिग बने रहे। और जब १९४८ में कैदियों की अदला-बदली हुई, तो क्रज भारत लौटे।

भारत लौट आने पर देश के प्रति वफादार और दृढ़ रहने के उपलक्ष्य में भारत गणतन्त्र ने फ्लाईट लैफ्टीनैंट डी० क्रज को अशोक-चक्र (द्वितीय श्रेणी) द्वारा सम्मानित किया।

अलरिच अन्थोनी डि० क्रज मद्वारम, मद्रास के रहने वाले हैं। वह १९४३ में भारतीय हवाई सेना में भरती हुए थे और जनवरी १९४६ में क्रज उड़ाका अफसर के रूप में तैनात हुए थे।

: ३६ :

सवार पृथ्वीसिंह

बच्चे रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, औरतें सिसक रही हैं, बुढ़िया औरतें रह-रह कर मैले-मैले पल्ले से आँखों का पानी पोंछ लेती हैं, बूढ़े हैं कि भीगी-भीगी आँखों से चुपचाप देख-देख कर नजर फेर लेते हैं, जवान हैं कि उनकी गीली-गीली आँखों में लाली

है। कितना हो-हल्ला है। १५०० बच्चे-औरतें-बूढ़े-जवान व्याकुल हैं। उनकी आँखें स्टेशन से सटे गाँव के हर मकान, हर रास्ते, हर मोड़ पर अटक जाती हैं। कितना भारी हो गया है उनका दिल, उसके बोझ के मारे सब दबे-दबे चक-पिराना (पश्चिमी पंजाब) को छोड़ देंगे, कुछ ही मिनटों में रेल बहुत दूर-दूर ले जायगी। उनके पूर्वजों की सदियों की निशानी चक-पिराना सदा के लिए आँखों से ओझल हो जायगा। वह उसे कभी नहीं देख सकेंगे, उसकी धूलि के कणों में कभी लोट नहीं सकेंगे—कभी भी नहीं। वहाँ के जाने-पहचाने पेड़, वहाँ के अन्न-जल का स्वाद जीवन में अब कभी नहीं मिलेगा।

सदियों से दीवार के साथ सटे हुए मकान में रहने वाला आज दुश्मन बन गया है। कितना दुख-दर्द था हर पड़ोसी-पड़ोसी में। प्यार भी था हर पड़ोसी-पड़ोसी में, लेकिन भारत का विभाजन होते ही पड़ोसी-पड़ोसी के दिल में दराड़ पड़ गई। दिल की दराड़ ने सटे-सटे मकानों में दराड़ पैदा कर दी। गाँव भर में दराड़ पैदा हो गई। गाँव में रहने वाले इंसान में दराड़ पैदा हो गई। हिन्दू-मुसलमान के मेल से बना इंसान हिन्दू बना, मुसलमान बना—लेकिन इंसान नहीं, पशु बन गया।

सदियों से जिनके पूर्वज साथ-साथ रहे थे, जिनके पूर्वजों ने एक दूसरे—हर इंसान की कद्र की थी, जिनकी नजरों में मनुष्यता का दर्जा सबसे ऊँचा था, आज वहाँ हिन्दू नहीं रहेगा, हिन्दू भारत में, लेकिन इंसान! इंसान के लिए कहीं जगह नहीं।

और तीन हजार भीगी-भीगी इंसानी आँखें परिचित घरों से निकल-निकल कर स्टेशन पर आ रुकी हैं। रेल के डिब्बे चलेंगे, और वह चलेंगी।

और इंजन के पीछे लगे रेल के डिब्बे प्लाटफार्म पर आ रहे हैं। हजारों दिल धक्-धक् करने लगे। डिब्बों में चढ़ने की इतनी उतावली, लेकिन कितनी परवशता के साथ वह भारी-भारी पाँव डिब्बों की सीटों पर जगह पा लेने के लिए तेजी के साथ उठ रहे हैं। हर डिब्बे में कितना चीत्कार है, बच्चे रो रहे हैं, औरतें-जवान-बूढ़े व्याकुल हैं। पड़ोसी हैं कि सदियों से साथ-साथ रहने वालों के रक्त के प्यासे हैं। वह चाहते हैं कि उनके गाँव का हर वासी, जो रेल में बैठ रहा है, जीवित न रह पाए। वह चाहते हैं, मौका मिले कि औरतों-बच्चों-बूढ़ों की गर्दनें उतार दी जायँ। डिब्बों से लहू की धाराएँ बह निकलें। वह पड़ोसी आज इंसान नहीं, मुसलमान है। उसमें मनुष्यता नहीं पशुता है।

गाड़ी के डिब्बे ठसाठस भर गए। सैनिकों ने सारी गाड़ी की देख-भाल की। गार्ड को सूचना दी। गार्ड ने सीटी दी। रेल चली। अभी प्लाटफार्म से पूरी तरह निकली भी नहीं थी कि "मार डालो! काट डालो!" की आवाजों के साथ गाड़ी पर हमला हो गया। कुछ डिब्बे इंजन के साथ आगे जा रहे थे, कुछ प्लाटफार्म पर रह गए। दो हजार आदमियों के हाथों में लाठियाँ, छुरियाँ, बर्छे, तलवारें थीं। गाड़ी पर हमला हुआ कि तीसरी कवैल्री के सवार पृथ्वीसिंह के साथी शेरों की तरह भीड़

पर झपटे। सैनिकों की इस कार्यवाही से भीड़ तो तितर-बितर हुई, लेकिन पृथ्वीसिंह ने देखा कि इंजन कुछ डिब्बों के साथ आगे-ही-आगे बढ़ रहा है। उन डिब्बों में बैठों की जानें नहीं बच सकतीं! लेकिन पृथ्वीसिंह अकेले ही दौड़ पड़े। वह चलते इंजन पर चढ़ गए। उन्होंने देखो, दो गुण्डों ने ड्राईवर को पिस्तौल का निशाना बना रखा है और ड्राईवर इंजन को बढ़ाए चला जाता है। बात-की-बात में उन्होंने एक को गोली से मार डाला, और दूसरा, साथी की हालत देख कर इंजन से कूद गया। इंजन बढ़ने से रुका। सवार पृथ्वीसिंह ने ड्राईवर को आदेश दिया कि इंजन वापिस करो।

इंजन लौटा और अलग हुए डिब्बे फिर से जोड़े गए। चक-पिराना के १५०० प्राणी जीवित थे, एक का भी बाल बाँका नहीं हुआ। सवार पृथ्वीसिंह की तत्परता और हिम्मत से ऐसी विकट परिस्थिति में १५०० असहाय प्राणियों की रक्षा हो गई।

आखिर, रेल चली। रेल बढ़ती गई, और चक-पिराना आँखों से ओझल हो गया। उसके वासी सदा के लिए उसे छोड़ आए। भारत की भूमि पर पाँव रखते ही उन्हें लगा कि वे फिर से मनुष्यता से परिपूर्ण देश में पहुँच गए हैं। औरतें-मर्द-जवान-बूढ़े सवार पृथ्वीसिंह की हिम्मत और वीरता की प्रशंसा करते थकते नहीं थे।

सवार पृथ्वीसिंह को इस वीरतापूर्ण साहस के बदले भारत गणतन्त्र ने १५ अगस्त १६५२ को "अशोक-चक्र-द्वितीय श्रेणी"

द्वारा सम्मानित किया। साहस के बल पर मनुष्य क्या कर सकता है, इसका जीवित उदाहरण सवार पृथ्वीसिंह हैं।

: ३७ :

ले० कर्नल गुरुचरणसिंह

एकाएक रेलगाड़ी चलती-चलती रुकी, तो प्रकाशहीन गाड़ियों में शोर मच गया। बाहर घने अँधेरे से रेलगाड़ी के डिब्बों में बैठे यात्रियों पर गोलियाँ दागी जा रही थीं, टार्चों के प्रकाश में चमकती तलवारों के साथ दंगई जहाँ-तहाँ रेल के डिब्बों में प्रविष्ट हो जाना चाह रहे थे। एक हजार दंगई ३८०० शरणार्थियों से भरी गाड़ी को कत्ल कर देने के लिए उतावले थे।

"मारो-मारो !"

"काट डालो, एक न बचे। बच्चा-बच्चा क़त्ल कर दो !" और इन आवाजों के साथ गोलियाँ दागी जाने लगीं। रेल के डिब्बों में बैठे ३८०० शरणार्थी व्याकुल हो उठे। नवयुवक उठे और रेल-डिब्बों की खिड़कियों और किवाड़ों पर तन कर डट गए। हर युवक ने सोचा— जीते जी औरतों को अपमानित नहीं होने दूँगा, बच्चों की, बूढ़ों की रक्षा करूँगा। जान चली जाय पर आँखों से अपमान होता न देखूँगा। लेकिन दंगइयों की संख्या एक हजार से अधिक थी। पिस्तौलें, बन्दूकें, तलवारें, भाले और लाठियाँ लिये दंगई समूची गाड़ी को घेर चुके थे। गाड़ी के बाहर दंगई

"मारो-मारो" के शोर से शरणार्थियों को भयभीत कर रहे थे, और भीतर के ३५०० शरणार्थी निहत्थे होने पर भी वीरतापूर्वक मर जाने की तय्यारियाँ कर रहे थे।

प्रस्तुत शरणार्थी गाड़ी की रक्षा के लिए मेजर गुरुचरणसिंह के नेतृत्व में फौजी दल रेल में साथ-साथ चल रहा था। मेजर गुरुचरणसिंह ने देखा कि बहुत से दंगाई डिब्बों में चढ़ गए हैं। उन्होंने दल को आज्ञा दी कि गोली न चलाई जाय। सम्भव है, उससे रेल में बैठों को ही हानि हो। वह साथी आठ जवानों को लेकर गाड़ी से उतरे। बिना गोली दागे उनके दल ने भीड़ पर हमला किया। इससे दंगइयों में भगदड़ मच गई। लेकिन भगदड़ में ही दंगइयों ने फौजी दल पर गोलियाँ चलाईं। मेजर गुरुचरणसिंह के तीन गोलियाँ लगीं। लेकिन वह गोलियों से घायल होने पर भी शरणार्थियों के डिब्बों में से दंगइयों को घसीट-घसीट कर बाहर कर रहे थे। उनके शरीर पर के तीन घावों से रक्त बह रहा था, पर उन्हें अपनी सुध कहाँ थी! उन्हें तो एकमात्र ध्यान ३८०० शरणार्थियों का था, जिनकी जानें उन्हें सौंपी गई थीं।

अब मेजर गुरुचरणसिंह इंजन के पास वाले डिब्बे में जा रहे थे। वही एक डिब्बा बाकी बचा था। उन्होंने एक हाथ से हैंडल थाम कर चढ़ना चाहा कि गाड़ी के नीचे छिपे दो दंगइयों ने बर्छियों से उन पर हमला कर दिया। मेजर गुरुचरणसिंह उनके घातक वार से बच तो गए किंतु घाव गहरे लगे। इस बुरी तरह

घायल होने पर भी मेजर अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ थे। उन्होंने एक-एक कर सभी डिब्बों में से दंगाइयों को निकाल बाहर किया।

ऐसे खतरनाक मौके पर मेजर (अब लै० कर्नल) गुरुचरणसिंह तनिक भी व्याकुल हो जाते अथवा अपनी और अपने दल की रक्षा की ओर ध्यान देते, तो कितना भारी अनर्थ हो जाता किन्तु भारतीय सैनिक का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह कर्तव्य के सामने अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तय्यार हो जाता है। लै० कर्नल गुरुचरणसिंह ने साहस, नेतृत्व और कर्तव्य-परायणता के बल पर इतने प्राणियों की रक्षा की।

× × ×

उक्त घटना सितम्बर १९४७ की है जब कि विभाजन के बाद पंजाब भर में साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। लै० गुरुचरणसिंह २६ लाईट अ० अ० रेजिमेंट से संबद्ध थे। गत १५ अगस्त १९५२ को भारत गणतन्त्र ने लै० क० गुरुचरणसिंह को "अशोक-चक्र-द्वितीय श्रेणी" द्वारा सम्मानित किया।

: ३८ :

वारंट आफीसर सुन्दरेसैया

मई १९५० में सुन्दरेसैया झाँसी से लखनऊ जाने वाली सवारी गाड़ी में सफर कर रहे थे। गाड़ी पूरी रफ्तार के साथ जा रही थी। सुन्दरेसैया ने अखबार-पढ़ना छोड़ कर सहसा बाहर की

ओर झाँका। क्या देखते हैं कि गाड़ी के एक डिब्बे में आग लगी हुई है। उन्होंने एकाएक खतरे की जंजीर को खींचा, लेकिन खींचने पर पता लगा कि वह बेकार है। जंजीर बेकार है, कितना भारी अनर्थ हो जायगा। सारी गाड़ी तबाह हो जायगी। उनका दिल और दिमाग परेशान था। समय भी नहीं था, और फौरन ही गाड़ी को रुकना चाहिए। क्षण ही भर में उनकी आँखों के सामने से विनाश का वह भयंकर दृश्य आकर निकल गया।

वह उठे। चलती गाड़ी के बाहर हर डिब्बे के पाँवदान पर पाँव-पाँव जमाते चलने लगे। हर पाँव के बाद वह इंजन के पास-ही-पास होते गए। और अंततः वह इंजन के पास जा पहुँचे। सुन्दरेसैया ने ड्राइवर को दिखाया कि अमुक डिब्बा जल रहा है। ड्राइवर ने सावधानी के साथ तत्काल गाड़ी रोकी, और आग को शान्त किया गया। अगर सुन्दरेसैया तनिक भी देरी कर जाते तो यात्रियों को कितनी हानि पहुँचती, और साथ ही रेलवे का भी भारी नुकसान होता।

इस साहस पूर्ण कार्य के उपलक्ष में फ्लाईट सार्जेन्ट (अब वारन्ट आफीसर) अ० सुन्दरेसैया को ४ फरवरी १९५२ को "अशोक-चक्र—द्वितीय श्रेणी" का पदक प्रदान किया गया।

वारन्ट आफीसर सुन्दरेसैया मदरास के रहने वाले हैं। दिसम्बर १९३९ में वह भारतीय हवाई सेना में भरती हुए थे वर्तमान में सुन्दरेसैया एयर हैडक्वार्टर्स के टैकनीकल डाइरैक्टरेट में हैं, और इस घटना के बारे में जब उनसे पूछा गया तो वह

सहज भाव से बोले : "मैं तो इस घटना को भूल ही चुका था। और इसके कई सप्ताह बाद जब रेलवे अधिकारियों का धन्यवाद का पत्र मिला, तो मुझे इसका स्मरण हो आया।"

: ३९ :

सिपाही सेवासिंह

१३ सितम्बर १९४८ की बात है। हैदराबाद में "पुलिस-एक्शन" के सिलसिले में एक दस्ता जलकोट की ओर बढ़ रहा था। इस दस्ते को जलकोट में हमलावरों पर आक्रमण करना था। आक्रमणकारी दस्ते के जवान तेजी के साथ दुश्मन की ओर बढ़ रहे थे। सब में आगे सिपाही सेवासिंह था। एकाएक ब्रेनगन से गोलियों की बौछार होने लगी। सेवासिंह कुछ आगे निकल गया और बाकी दस्ता रुक गया। लेकिन सेवासिंह रुका नहीं। अकेला ही बढ़ता गया। वह ब्रेनगन से मार करने वालों के बिलकुल निकट जा पहुँचा। उसी ब्रेनगन के कारण ही सारा दस्ता रुक गया था।

सेवासिंह ने शत्रु की खंदकों पर दो हथगोले फैंके। हथगोलों ने अपना जौहर दिखाया, और ब्रेनगन ठंडी पड़ गई। लेकिन इतने से ही सेवासिंह कब मानने वाला था। उसने बन्दूक पर संगीन चढ़ाई, और दुश्मन पर बाघ की तरह झपटा। शत्रु के तीन आदमियों को बात-की-बात में भूमि पर सुला दिया। अब

रास्ता साफ था। बाकी सेना आगे बढ़ी, और बिना किसी प्रकार की हानि के जलकोट को शांत कर दिया गया।

इस विलक्षण वीरता के उपलक्ष में सिपाही सेवासिंह को ३० जुलाई, १९५२ को "अशोक-चक्र द्वितीय श्रेणी" द्वारा सम्मानित किया गया। इस वीरता का विवरण देते हुए कहा गया है : "कि सिपाही सेवासिंह उस पल्टन के जवानों में आयु की दृष्टि से सब से छोटा था। इस पुलिस कार्यवाही के समय उसकी आयु २० वर्ष थी। किंतु उसकी दृढ़ निश्चयता और आक्रमण करने की भावना असंदिग्ध रूप में दूसरों के लिए उदाहरण है।"

सिपाही सेवासिंह के इस वीरतापूर्ण साहस की प्रशंसा में स्वयं जनरल के० एम० करिअप्पा ने भी उन्हें रोमन उर्दू में पत्र लिखा था। सिपाही सेवासिंह वर्तमान में दिल्ली के पुलिस विभाग में हैं।

: ४० :

हवलदार अमरसिंह

हैदराबाद "पुलिस एक्शन" :

"बल्हारशाह के रेलवे पुल को रजाकार उड़ा देना चाहते हैं। पुल के पार संतरी है, जो इस ताक में है कि भारतीय सैनिकों की गाड़ी रेल-पुल के बीच पहुँचे, और वह उसे उड़ा दे; रजाकार मुस्तैदी के साथ खड़ा है। लेकिन रेल-पुल पर कब्जा होना चाहिए, बिना नुकसान उठाए, बिना जान गँवाए। और यह सम्भव

भी है, लेकिन शहीदों की जरूरत है, जो सिर उतार कर आगे बढ़ने को तैयार हों, जो देश और समाज के लिए कुर्बानी दे सकें, उनकी जरूरत है।" और अफसर के इन शब्दों के साथ एक सन्नाटा-सा छा गया। हर सैनिक की आँखें कह रही थी : 'यहाँ तो हर कोई कुर्बान होने को तय्यार है। हर सैनिक ने देश और समाज के लिए सर पर कफनी बाँध रखी है। इशारा ही भर होना चाहिए, जिसे चाहें-जितने चाहें; कुर्बानी के लिए तय्यार हैं।...'

आँखों-ही-आँखों में कही जाने वाली कहानी के अखीर तक पहुँचे बिना सैनिकों की आँखों ने देखा कि हवलदार अमरसिंह पंक्ति से बाहर खड़े थे। अमरसिंह का रोम रोम कुर्बान हो जाने को तय्यार था। बल्हारशाह के रेल-पुल पर बिना नुकसान उठाए कब्जा किया जायगा। अफसर ने इशारा किया, और अमरसिंह सब समझ गए।

इंजन हाजर था। एक खुला डिब्बा था। अमरसिंह खुले डिब्बे में जा डटे। डिब्बे को इंजन के आगे जोड़ा गया। बल्हार-शाह के रेल-पुल पर अमरसिंह को लेकर इंजन चला। रजाकरों ने खुले डिब्बे के सवार पर तड़ातड़ गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। लेकिन गोलियाँ चल रही थीं—उन्हें चलना था—और अमरसिंह तेजी के साथ आगे-ही-आगे बढ़ रहे थे। इंजन की रफ्तार तेज थी, अमरसिंह के दिल और दिमाग की रफ्तार तो उससे भी ज्यादा तेज थी। खुले डिब्बे के साथ इंजन पुल के दूसरी ओर तक जा पहुँचा। और इतनी तेज़ रफ्तार में ही कमाल की फुरती

के साथ अमरसिंह ने ब्रेक लगाई। एकाएक ब्रेक के लगने से ज़ोर का धमाका-सा हुआ। लेकिन जैसे बादलों को चीरती हुई बिजली कौंध जाती है, अमरसिंह उसी झटके के साथ नीचे कूदे। वह पुल के रज़ाकार संतरी के पास थे, और संतरी ने चाहा कि बारूद से पुल को उड़ा दे, लेकिन अमरसिंह की गोली ने उसे ठंडा कर दिया था। वह मर चुका था, उसका पुल उड़ाने का इरादा भी उसके साथ ही मर गया था।परंतु मशीन-गन चलाने वाला दस्ता अभी जीवित था। उसकी ओर से गोलियों की बौछार जारी थी। उसी बौछार में अमरसिंह उसकी ओर बढ़े। अमरसिंह ने मशीनगन चलाने वालों को पल ही भर में चारों खाने चित कर दिया। अकेले ने ही इतना साहस किया, इतनी वीरता दिखाई कि सब दंग रह गए।

बल्हारशाह का पुल बिना नुकसान उठाए सही हालत में था। उस पर भारतीय सेना का अधिकार था। हवलदार अमरसिंह की अपूर्व वीरता और साहस के बल पर इतना बड़ा काम सहज ही पूरा हो गया।

सातवीं पंजाब रैजिमैंट के हवलदार अमरसिंह को इस वीरता एवं साहस के उपलक्ष में १५ अगस्त १९५२ को "अशोक-चक्र—द्वितीय श्रेणी" प्रदान किया गया। विवरण में कहा गया है: 'कि यदि बल्हारशाह का रेल-पुल उड़ा दिया जाता, तो हैदराबाद "पुलिस एक्शन" में न जाने कितनी देर हो जाती, और उसके साथ ही हानि भी बहुत होती।"

भारतीय सेनाओं के लिए पदक

भारत की आजादी के बाद भारतीय सेनाओं के वीर सैनिकों को उनकी वीरताओं के उपलक्ष में सम्मानित करने के लिए २६ जनवरी १९५० को भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति ने निम्न पदकों की स्वीकृति प्रदान की। ये पदक भारत की आजादी के दिन—१५ अगस्त, १९४७ से जारी किये गए हैं।

परम-वीर-चक्र

परम-वीर-चक्र भूमि, नौ, अथवा वायु-सेना के सैनिकों को शत्रु की मौजूदगी में विलक्षण वीरता, अथवा साहसिक कार्य, अथवा आत्म-बलिदान का कोई महान कार्य करने के उपलक्ष में दिया जायगा। सब प्रकार के सम्मानों में यह सर्वोच्च है। यह गोलाकार पदक है, जो सप्त-धातु (Bronze) का बना हुआ है। इसका घेरा १$\frac{3}{8}$ इंच है। इसके एक ओर "इन्द्र के चार वज्र" और अशोक स्तंभ खुदा है। इसके दूसरी ओर "परम-वीर-चक्र" तथा पानेवाले का नाम एवं तारीख आदि लिखी जाती है। परम-वीर-चक्र हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा रहता है। और इन शब्दों के दोनों ओर कमल के फूल हैं।

महावीर-चक्र

महावीर-चक्र शत्रु की मौजूदगी में अपूर्व वीरता के उपलक्ष में भूमि, नौ अथवा हवाई सेना के सैनिकों को दिया जायगा। यह परम-वीर-चक्र के बाद द्वितीय श्रेणी का है। यह चांदी का बना हुआ गोलाकार पदक है। इसका गोलाकार १$\frac{3}{8}$ इंच का है। इसके एक ओर पांच तारे एवं बीच में अशोक-स्तंभ खुदा हुआ है। इसके दूसरी ओर 'महावीर चक्र'' हिन्दी और अंग्रेजी में लिखा है और दो कमल के फूल बने हे।

वीर-चक्र

महावीर-चक्र के उपरान्त तीसरे स्थान में वीर-चक्र है। यह भूमि, नौ या हवाई सेना के सैनिक को शत्रु की उपस्थिति में वीरतापूर्ण कार्य के लिए भेंट किया जाएगा।

वीर-चक्र का पदक भी चांदी का बना है। इसका गोलाकार १$\frac{3}{8}$ इंच है। इसके गोलाकार के मध्य में अशोक-स्तंभ है। अशोक स्तंभ के बाहर एक चक्र है, जिस पर पांच तारे बने हैं। इसके दूसरी ओर "वीर-चक्र" हिन्दी और अँगरेजी में लिखा है, जिसके दोनों ओर कमल के फूल हैं।

सशस्त्र सेनाओं, तथा चिकित्सा दलों के सब सदस्यों और सेनाओं से संबंधित सब असैनिक सदस्यों को वीरतापूर्ण कार्यों के लिए ये पदक दिये जा सकेंगे।

यदि किसी सैनिक ने एक चक्र को एक बार प्राप्त कर लिया

हो, और वह पुनः वीरतापूर्ण कृत्य करे और किसी एक चक्र का अधिकारी हो, तो उसी चक्र पर एक अन्य रेखा खींच दी जायगी।

अशोक-चक्र

यह चक्र भूमि, समुद्र या वायु में शत्रु के साथ युद्ध से अन्य अवस्थाओं में वीरता एवं साहसपूर्ण कार्यों के लिए दिया जायगा। इसके तीन दर्जे होंगे। प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी। अशोक-चक्र प्रथम श्रेणी का पदक सर्वाधिक विलक्षण वीरता या किसी साहसिक कार्य अथवा महान धैर्य या आत्मत्याग के लिए भेंट किया जायगा। द्वितीय श्रेणी का पदक सर्वाधिक विलक्षण वीरता के लिए, और वीरतापूर्ण कार्य के लिए तृतीय श्रेणी का पदक दिया जायगा।

भू, नौ और वायु सेना के सब अफसर और पुरुष तथा स्त्रियां अथवा टैरिटोरियल सेना के रीजर्व फोर्सिज़ और सैन्य रक्षादल इसके अधिकारी होंगे। सेना के नर्सिंग दल तथा असैनिक नागरिक स्त्री-पुरुष भी इस पदक के समानाधिकारी होंगे। देश में शांति और व्यवस्था कायम रखने जैसे कार्यों के लिए भी इन पदकों की रचना की गई है।

इन उपाधियों में से किसी एक के हर प्राप्तिकर्त्ता को, जो नौ-सेना में सब लैफ्टीनैंट, भू-सेना में सैकिंड लैफ्टीनैंट, अथवा वायु-सेना में पाइलट आफीसर के दर्जे से जूनियर है, उस सैनिक कार्यवाही की तारीख से कि जिसके लिए पदक मिला हो, विशेष

पैंशन दी जायगी, और पदक पर लगी अतिरिक्त रेखा के लिए अतिरिक्त पैंशन भी मिलेगी। यह पैंशन प्रैजिडैंट द्वारा नियत दर के अनुसार आजीवन काल के लिए होगी। इस तरह के पदकों के प्राप्तिकर्त्ता की मृत्यु हो जाने पर पैंशन उसकी विधवा को आजीवन या पुनः विवाह कर लेने तक दी जायगी।

१९५३ से निश्चय किया गया है कि परम-वीर-चक्र प्रतिवर्ष २६ जनवरी को दिये जाँय, और शेष पदक १५ अगस्त-स्वाधीनता दिवस पर प्रदान किये जाया करेंगे।

स्वतन्त्र भारत के सर्वप्रथम भारतीय कमांडरिनचीफ़

जनरल के० एम० करिअप्पा

भारतीय सैनिक का सारा जीवन राष्ट्र का है; जब तक वह जीवित रहेगा, उसका सब-कुछ राष्ट्र के लिए है—और इस सिद्धान्त के जीवित उदाहरण हैं स्वतन्त्र भारत के सबसे पहले भारतीय कमाण्डरिन-चीफ जनरल के०एम० करिअप्पा। भारतीय सेना में निरन्तर ३२ वर्ष से भी ज्यादा समय तक कई सैनिक ओहदों पर सैनिक-कर्त्तव्य पालन करने के बाद जब जनरल के० एम० करिअप्पा रिटायर हुए, तब उन्होंने एक बयान में कहा था : मेरा सारा जीवन देश के लिए है। सैनिक कर्त्तव्यों से रिटायर हो जाने पर भी मेरे जीवन का प्रत्येक पल देश-सेवा के लिए है। जब कोई सैनिक सेना में भरती होता है, तो वह इस आशय की प्रतिज्ञा करता है कि मुझ में जिस समय तक प्राण रहेंगे, जब तक मेरे शरीर में साँस चलती रहेगी, मैं राष्ट्र के तई वफादार रहूँगा; मैं राष्ट्र के लिए प्राणों और यहाँ तक कि अपने सब-कुछ का भी त्याग करने में हिचकूँगा नहीं। इसी विचार को नजर में रखते हुए उन्होंने और आगे कहा था : एक सैनिक के नाते विश्राम या

आराम जैसा सवाल मेरे जीवन में पैदा ही नहीं होता। यह जीवन कर्म करते रहने के लिए है। थक कर आराम करने का नाम जीवन नहीं—जिन्दगी नहीं। जिंदगी तो देश, समाज और राष्ट्र के हित के लिए कर्म करते रहने की खातिर है। और रिटायर होते समय के इस बयान को पढ़कर भारतीय सेना ही नहीं बल्कि देश के बच्चे-बच्चे ने जनरल करिअप्पा के इन शब्दों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उनके बयान को सुन और पढ़कर भारतीय सेना के हर जवान की छाती गर्व से फूल उठी थी।

इसका एक और भी कारण था। स्वतन्त्र भारत के प्रथम कमाण्डरिनचीफ न केवल भारतीय सेनाओं में ही लोकप्रिय थे बल्कि असैनिक-क्षेत्रों में भी उन्हें समान आदर एवं सम्मान प्राप्त था। सबसे ऊँचे सेना-पद पर होते हुए भी वह सामाजिक-सुधार के कामों में बहुत दिलचस्पी के साथ हिस्सा लेते रहे। देश के किसी हिस्से में अकाल पड़ जाने पर, देश के किसी कोने में बाढ़-पीड़ितों की सहायता के समय, देश से गरीबी और अज्ञानता को दूर करने के कामों में, और दीन-दुखियों की सेवा के कार्यों में—मतलब यह कि सभी क्षेत्रों में वह काम करते दिखाई देते। एक फौजी होने के नाते कोई यह ख्याल कर सकता है कि सेना का इतना बड़ा अफसर महज कड़े अनुशासन और नियन्त्रण का ही पुतला हो सकता है, लेकिन ऐसा ख्याल करने वाला सहज ही तब अपनी भूल को महसूस करने लगेगा, जब उसे यह पता होजाय कि फौजी अनुशासन और नियन्त्रण के प्रति बेहद कड़े होने पर

भी उनका दिल दीन-दुखियों और पीड़ितों के लिए पसीज उठता था। इस सम्बन्ध में मैंने एक घटना सुनी है: एक बार एक असैनिक व्यक्ति ने उन्हें पत्र लिखा। पत्र में उस व्यक्ति ने लिखा था—मैं अपने परिवार के पाँच सदस्यों सहित गत दो दिन से भूखा हूँ। जी चाहता है, जीवन का अंत कर लूँ। ये पत्र मैं दुःख के आँसुओं से नहीं, अपने रक्त से लिख रहा हूँ।—कहते हैं, जनरल करिअप्पा को यह पत्र रात के समय मिला। उन्होंने पत्र पढ़ा तो वे मोम की तरह पिघल गए। उनका दिल चीत्कार कर उठा। उनके नेत्र छलछला आये। उन्होंने तत्काल एक सौ रुपए का नोट उस व्यक्ति के यहाँ रातों-रात पहुँचाया। यह एक उदाहरण है—और भी ऐसे अनेक उदाहरण हैं, लेकिन इस उदाहरण को पेश करने का मेरा उद्देश्य केवल यह है कि सैनिक केवल हिंसा नहीं करता, वह जीवन भी देता है, यह केवल निर्दयी नहीं, दयावान भी होता है। जनरल करिअप्पा का जीवन भारतीय जवान के लिए आदर्श है। उनकी जीवन-कथा पढ़ने से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि वे कितनी लगन के साथ अपने उद्देश्य के तईं निरन्तर बढ़ते गए।

जनरल करिअप्पा का जन्म सन् १६०० की २८ जनवरी को दक्षिण भारत के कुर्ग नामक स्थान में हुआ था। शिक्षा योग्य होने पर वह मरकरा के सेंट्रल हाईस्कूल में भरती हुए और दसवीं श्रेणी के बाद प्रेसीडेंसी कालेज मदरास में उच्च-शिक्षा प्राप्त की। इस कालेज-शिक्षा के समय वे हाकी, क्रिकेट तथा टैनिस के

खिलाड़ी थे।

उपरान्त वे डेली कालेज इन्दौर में सैन्यशिक्षार्थी के रूप में भरती हुए। लगभग उन्नीस वर्ष की आयु में वह कमिशंड आफीसर हो गए, अर्थात् दिसम्बर १९१९ में भारतीय सैन्य-शिक्षार्थियों का जो सबसे पहला दल डेली कालेज से निकला, उसमें आप भी एक थे। कमिशंड आफीसर होकर करिअप्पा १९२० से १९२२ तक २/१२५ नेपियर राइफल्स के एडजूटैंट के रूप में मैसोपटेमिया (अब ईराक) में रहे। १९२४ से १९२५ तक वे १/७ डोगरा तथा १/७ राजपूत रेजिमैंटों के साथ वज़ीरिस्तान में रहे। १९२५ के बाद श्री के० एम० करिअप्पा ने चीन, जापान, अमरीका, कैनेडा, ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी, स्विट्ज़र-लैंड, इटली आदि देशों की यात्रा की। उनकी यात्रा का उद्देश्य उक्त देशों के फौजी अफसरों के साथ मुलाकातें करना और वहाँ की सैनिक-शिक्षा तथा सैनिकों के रहन-सहन के बारे में ज्ञान प्राप्त करना था। इस यात्रा के फलस्वरूप श्री करिअप्पा का नाम भारतीय सेनाओं में प्रख्यात हो गया और साथ-ही-साथ उच्चाधिकारियों को उनकी योग्यता के विषय में भी दृढ़ विश्वास हो गया। इस भ्रमण के बाद, १९३३ में वह स्टाफ कालेज कोइटा में प्रविष्ट हुए। श्री करिअप्पा ही सर्व-प्रथम भारतीय अफसर थे, जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

कोइटा में दो वर्ष की ट्रेनिंग के बाद १९३५ में वह सिंगापुर के नौ तथा हवाई अड्डों का निरीक्षण करने गए। वहाँ से लौटकर

श्री करिअप्पा ने उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण के लिए प्रान्त के देहातों में दौरा किया। अब १६३६ हो गया था और उन्हें दक्षिण जिले का स्टाफ कैप्टिन नियत कर दिया गया। दो वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के उपरांत श्री करिअप्पा दक्षिण जिले के डिप्टी असिस्टेंट क्वार्टर-मास्टर जनरल के पद पर नियुक्त किये गए। वह सबसे पहले भारतीय आफीसर थे, जिन्हें द्वितीय ग्रेड पर नियुक्त किया गया था। १६३६ में उन्हें खोजक ब्रिगेड (जो बाद में २०वीं इंडियन इंफैंट्री ब्रिगेड कहलाई) का ब्रिगेड मेजर बनाया गया।

अप्रैल १६४१ से १६४२ तक वह १०वीं इण्डियन डिवीजन के साथ ईराक, सीरिया और ईरान में रहे, जहाँ उन्होंने युद्ध में भाग लिया। इसी बीच, १६४२ में वह तीन सप्ताह के लिए नार्थ अफ्रीका के दौरे पर भी गये और उसके बाद भारत लौट आये।

अप्रैल १६४२ में वह लैफ्टीनैंट कर्नल हो चुके थे। मार्च १६४३ तक ७वीं राजपूत रैजीमैंट की मशीनगन बटालियन की कमान करते रहे। वह सबसे पहले भारतीय थे, जिन्होंने उस साल में बटालियन की कमान की थी। इसी मार्च १६४३ में उन्हें असिस्टैंट क्वार्टर-मास्टर जनरल (सैनिक कार्यवाही), ईस्टर्न आर्मी नियुक्त किया गया था और जुलाई में वह २६वीं इंडियन डिवीज़न के असिस्टैंट एडजूटैंट और क्वार्टर-मास्टर जनरल के रूप में अराकान में गये।

इस प्रकार लगातार उन्नत पदों पर कार्य करने के बाद वह

ब्रिगेडियर के पद के साथ आर्मी रिआर्गेनाईजेशन कमेटी के सदस्य नियत हुए। इस पद से उन्होंने अमरीका तथा कैनेडा की यात्रा की। १९४५ में वैस्ट प्वाइंट स्थित अमेरिकन मिलिटरी एकेडमी का भी उन्होंने दौरा किया। इस पद के साथ अमरीका तथा कैनेडा का दौरा करने वाले वे सर्व-प्रथम भारतीय थे।

जब आर्मी रिआर्गेनाईजेशन कमेटी का काम समाप्त हो गया तो जनवरी १९४६ से उन्होंने बन्नू फ्रन्टियर ब्रिगेट ग्रुप की कमान संभाली। इसके बाद दिसम्बर १९४६ में वह इम्पीरियल डिफैंस कालेज में प्रशिक्षण के लिए इंगलैंड गये। इससे पूर्व इस कालेज में प्रशिक्षण के लिए कभी कोई भारतीय सैनिक प्रविष्ट नहीं हुआ था, और इसका गौरव श्री करिअप्पा तथा एक अन्य साथी को सर्व-प्रथम प्राप्त हुआ था। जून १९४७ में उन्हें इंगलैंड से बुला लिया गया जिससे कि वह आर्म्ड फोर्सिज रीकांस्टीट्यूशन कमेटी की सब कमेटी में भाग ले सकें। और उसी के बाद जुलाई १९४७ में वह मेजर जनरल हो गए। इसी बीच, थोड़े काल के लिए वह चीफ आफ दि जनरल स्टाफ भी रहे।

उपरांत, दिसम्बर १९४७ में, लैफ्टीनैंट जनरल के पद से ही उन्हें जीओसी-इन-चीफ ईस्टर्न कमांड नियुक्त किया गया। इस प्रकार जनरल करिअप्पा सर्व-प्रथम भारतीय अफसर थे, जिन्हें आर्मी कमांडर बनाया गया था। १९४८ के आरम्भ में वह जीओसी-इन-चीफ डी० ई० पी० कमांड नियुक्त हुए। और १५ जनवरी १९४९ से श्री के० एम० करिअप्पा स्वतन्त्र भारत के सर्व-

प्रथम भारतीय कमांडरिनचीफ नियुक्त हुए।

काश्मीर घाटी के युद्ध के समय जनरल करिअप्पा जीओसी-इन-चीफ वैस्टर्न कमांड थे। सन् १६५२ में उच्चतम सैनिक पद से रिटायर होने के बाद भी उन्होंने क्रियात्मक रूप में राष्ट्र-सेवा की इच्छा प्रकट की। फलस्वरूप, भारत सरकार ने श्री के० एम० करिअप्पा को आस्ट्रेलिया में भारतीय हाई कमिश्नर के पद पर नियुक्त कर दिया। भारत के समान ही आस्ट्रेलिया में भी वह लोकप्रिय हो गए हैं।